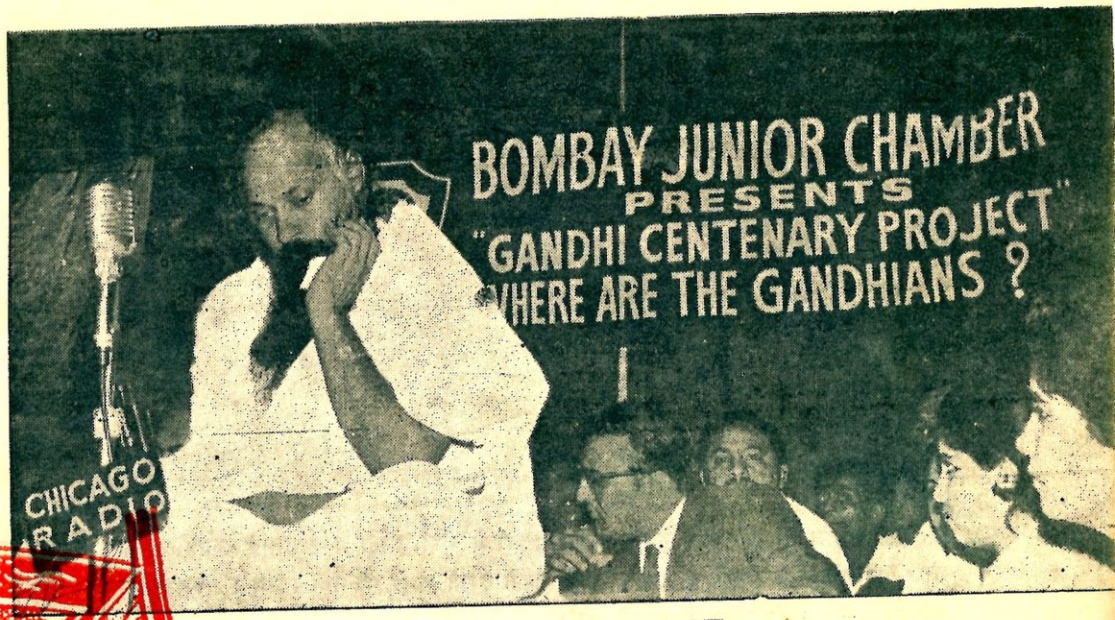

प्रिय ! सूर्य द्वार पर खड़ा है लेकिन तुम्हारे द्वार बंद हैं और तुम व्यर्थ ही अंधकार में घिरे हो। सत्य भी ऐसे ही द्वार पर खड़ा है, लेकिन तुम्हारी चेतना का एक भी झरोखा खुला हुआ नहीं है। पक्षपातों में, सम्प्रदायों में, शास्त्रों में बन्द तुम सत्य को जानना भी चाहो तो कैसे जान सकते हो ? सत्य तो सदा निकट है लेकिन मनुष्य स्वयं ही स्वयं के निकट नहीं है।

दो शब्द–

★ आज मनुष्य की बुद्धि और चेतना जिस तीव्रता से कुंठा, निराशा, संत्रास, दिशाहीनता एवं असह्याव्य-बोध का सामना कर रही है, शायद इसके पहले उसने कभी भी नहीं किया। किसी लम्बी छलांग के पूर्व सम्भवतः यही स्वाभाविक भी हो। जो भी हो, ऐसे जटिल क्षण में आचार्य श्री की उपस्थिति अनिवार्यतः हमें प्रसन्नता से भर देती है। आज धर्म, राजनीति नारी-पुरुष व समाज आदि जीवन के विविध अंगों पर वे जो वैज्ञानिक दृष्टि प्रस्तुत कर रहे हैं उस दृष्टि के योग्य प्रशंसा के न तो हम शब्द खोजे पाते हैं और न ही प्रस्तुतकर्त्ता के योग्य कोई विशेषण . . .।

★ कहना न होगा कि एक नई दुनिया निर्मित होनी शुरू हो गई है। आचार्य श्री ने विचारों के रूप में उसके बीज छींट दिये हैं। वे बीज गाँव-गाँव, व्यक्ति-व्यक्ति और अन्ततः सारी दुनिया के कोने-कोने तक पहुंच जायँ––इन्हीं भावनाओं से प्रेरित हो हमने इस पत्रिका का प्रकाशन किया है। हम सफलता के लिए आशा एवं उत्साह से भरे हैं। सच तो यह है कि यह सफलता 'हमारी' नहीं, हमारी––आपकी––उनकी––सबकी होगी––समस्त मानव जाति की . . .।

सप्रेम !

–युक्रांद परिवार

युक्रांद (आचार्य श्री रजनीश जी की सृजनात्मक जीवन दृष्टि का पाक्षिक संकलन-पत्र)

मानसेवी संपादक : अजित कुमार, सहसंपादक : आलोक पांडे आवरण : शशीन यादव

वर्ष : १ अंक ४ १ अगस्त १९६९

मूल्य : ६० न. पै. (एक प्रति) वार्षिक : १२) रु.

आचार्य रजनीश : एक चुनौती

—शिव

आचार्य श्री रजनीश से वैसे तो सारा देश ही परिचित है, पर सचमुच में कोई परिचित नहीं है, यह कह पाना कठिन है। क्योंकि वे कहते हैं—"... अब जो मैं साधारण आँखों से दिखाई पड़ता हूं वही नहीं हूं। अदृश्य और अज्ञात ने बन्द द्वार खोल दिये हैं और मैं उस जगत को देख रहा हूं जो आँखो से नहीं देखा जाता और उस संगीत को सुन रहा हूं जिसे सुनने में कान समर्थ नहीं होते हैं।" और मैं उन्हीं के सम्बन्ध में कुछ लिखने बैठा हूं। समझ में नहीं आता कैसे लिखूं ? क्या लिखूँ ? कई बार लिखा भी है और प्रकाशित होकर सामग्री सामने आई है तो लगा है कि कुछ भी तो नहीं लिख पाया। जो कहना चाहता था उसका शताँश भी तो नहीं कह पाया। और लगा है कि उनकी प्रशंसा करूँ तो भी उन्हें छोटा ही देखना है। हाँ, वे मुझे प्रशंसाओं के बहुत ऊपर लगे हैं। फिर कैसे कुछ कहूं ? लगता है उनका नाम ले लूँ और "चुप" हो जाऊँ ! मगर आह ! चुप रह पाना कितना कठिन है। अपनी सीमाओं में जो भी जितना भी, जैसा भी उन्हें जाना है, वह सब जिह्वा से निकल पड़ने को जैसे आतुर है। उसे भीतर रोक पाना असंभव हो गया है। अस्तु: स्मृतियाँ आज फिर ताजा हो आई हैं।

१० फरवरी १९६७ की संध्या—आह ! उस क्षण के प्रति, उस संध्या के प्रति कृतज्ञता कैसे प्रकट करूँ, जब पहली बार आचार्य श्री से मिलना हुआ था और मुझे सही मार्ग—दर्शन मिला था। उस समय मेरी कैसी विचित्र मनोदशा थी। घर—द्वार, पत्नी-बच्चे सभी कुछ छोड़ सन्यास ले लेने का निर्णय ले लिया था। निर्णय ले लिया था, कहना भी कदाचित् गलत होगा। वैसा ही हो गया था। भीतर से ही ऐसा कुछ हो गया था कि मैं असीम आनंद में था। दरअसल मैं उन अनुभूतियों से गुजर चुका था जिसमें मैंने स्वयं को परमात्मा अनुभव किया था। अपने पराये का भेद मेरे लिये मिट गया था। जात-पाँत की दीवारें कहीं विलीन हो गई थीं। मृत्यु का भूत मेरे लिये मर गया था। देशों की सीमा-रेखाएँ कहीं खो गई थीं। मैं सड़क पर निकलता तो मुझे स्त्री-पुरुष में भेद नजर नही आता था। सभी आत्मरूप दिखते थे। कोई रिक्शा-ताँगावाला भी अकारण ही दो चाँटे मुझे जड़ देता, तो भी उसे चूम लेने के सिवा मैं कुछ नहीं कर सकता था, ऐसे प्रेम से भरा था। सब मैं ही हूं, ऐसा लगता था। मैं बोलता तो संगीत झरता था। मेरा शरीर फूल से भी अधिक हल्का मालूम पड़ता था। मैं चलता था, पर चलता हुआ नहीं महसूस करता था। कार्य करता था, पर कुछ करता हुआ सा नहीं लगता था। मैं सोता था, पर जागने पर लगता था मैं जागा हुआ ही था। मैं जिससे भी एक शब्द बोलता अथवा जिसकी ओर एक निगाह देखता वह पिघलकर पानी हो गया लगता था। बाहर से आने पर बच्चे हमेशा की तरह दौड़ कर मेरी टाँगों से लिपट जाते पर कोई लिपटा है संवेदनात्मक स्तर पर ऐसा कुछ मुझे महसूस नहीं होता था। मेरे हृदय में एक ऐसा आनन्द भरा हुआ था जो सारी सृष्टि मिल जाने पर भी न बढ़ सकता था न सारी सृष्टि (परिवार की सीमा तो थी ही नहीं उस समय) के मिट जाने पर घट सकता था। सचमुच में तो मैंने जो अनुभव किया था उसमें कहीं कोई सृष्टि थी हीं नहीं। मैंने समझ लिया कि मुझे आत्म—ज्ञान हो गया है। मैं कैसे आनंद में था, यह सब बता पाना संभव

नहीं है। बड़ी असमर्थता है। वह शब्दों की सामर्थ्य के बाहर की बात है।

तो उस दिन आचार्य श्री मिलने को मुझे १५ मिनिट का समय मिला था। वे मुझे मुस्कराते हुए मिले थे। उनके द्वारा क्षण भर की औपचारिक पूछताछ के बाद जब मुझे अपनी बात शुरू करना हुआ तो मैंने घड़ी की ओर निहारा था और उन्होंने कहा था : "आप सब कुछ बतायें, पूरे विवरण के साथ, समय की चिन्ता न करें।" और जब मैंने उनसे सारा कुछ जो व जैसा हुआ था बताया तो उन्होंने कहा था।"मन की अनेक स्थितियाँ होती है। यह उनमें सर्वोच्च स्थिति है। यह भी सामान्य नहीं है। पर यदि इसे आत्म-ज्ञान समझ लेंगे तो भटक जाएँगे। यह उसका द्वार हो सकता है पर यह 'वह' नहीं है। उसके होने पर फिर कोई स्मृति नहीं रह जाता, कुछ स्मरण करने को नहीं रह जाता। वहाँ कोई दृश्य व दृष्टा नहीं रह जाता है। आनंद भी नहीं रह जाता है। यहाँ (हृदय के पास संकेत करते हुए) एक शून्य जैसा हो जाता है, जहाँ तक घर-द्वार छोड़ जाने की बात है, वह ठीक नहीं है। घर-द्वार उसमें कोई बाधा नहीं है। छोड़ जाना भी अहंकार है। कौन छोड़कर जायगा ? किसे छोड़कर जाएगा ?" और उनके इन सामान्य से लगते प्रश्नों ने जैसे मुझे झकझोर कर रख दिया था। मैं लगभग घण्टे सवा घण्टे की वार्तालाप के बाद उन्हें प्रणाम करके लौट आया, पर मेरे मन-मस्तिष्क को वे प्रश्न लगातार झंकृत करते रहे—"कौन छोड़कर जाएगा ? किसे छोड़कर जाएगा ? छोड़ जाना भी अहंकार है।" हाँ, उन्होंने एक बात और कही थी—"यह जो आनंद मिला है इसे अकेले में भोगें, इसका आनंद लें। किसी से कहें नहीं। क्योंकि लोग समझेंगे नहीं और कहेंगे कोई पागल है, बकता है। और यह भी अच्छी बात नहीं है कि तमाम लोग पागल कहें।" पर कहे बिना रहा कैसे जाता। मन की ही स्थिति जो थी। अस्तु।

मैंने कई लोगों से बताया और सचमुच ही कोई समझ न पाया था कि मैं कहता क्या हूं। और ज्यों-ज्यों बताता गया मेरा वह आनंद कम होता गया, कम होता गया। जब भी किसी से बताता था हर बार मेरा आनंद घट जाता था और समूचे शरीर पर से जैसे सड़क कूटने वाला 'रोलर' गुजर गया होता था। बेहद थकान एवं टूटन महसूस करता था। अंततः उस आनंद से खाली सा ही हो गया। स्मृतियाँ भर शेष रह गई हैं। मगर मैं दुखी नहीं हूं। मन की स्थिति की शायद यही अनिवार्य परिणति हो सकती थी। फिर जो होना हो था, जल्दी हो गया, अच्छा हुआ, पर इससे मुझे दुनियाँ को देखने की एक आँख जरूर मिल गई है—विशेषकर आचार्य जी को। १९६७ की फरवरी के पूर्व अगर पूरे ५५ करोड़ लोग कहते कि आचार्य श्री बहुत बड़े संत हैं; महात्मा हैं, पहुंचे हुये हैं, परमात्मा हैं. तो मैं कहता कि तुम सब गधे हो, अंधे हो। उस समय मेरे पास आचार्य श्री को देखने की आँख नहीं थी। मगर अब स्थिति एकदम उलटी हो गई है। एक आँख जो मिल गई है। अब ५५ करोड़ ही नहीं, सारा संसार भी उन्हें गलत कहे तो मैं कहूंगा "मेरे प्रिय, अभी तुम्हारी आँखें खुली नहीं हैं, तुम अंधे हो, तुम्हारा कसूर नहीं है।" और यही कहने के लिए आज, इस पत्रिका के माध्यम से हजारों-लाखों मित्रों से उसे बता रहा हूं जिसे आचार्य श्री ने उस दिन मना किया था, भले ही सब कुछ छिन जाय, पर उसे कैसे रोकूँ ? कैसे न बताऊँ ? जिससे कि आचार्य श्री को समझने में मित्रों को मदद मिल सकती है। लोग उन्हें, जाने, समझें, इसके लिए आनंद छिन जाने की बात दूर, मैं मिट भी जाऊँ तो मुझे संतोष है। सत्य की राह पर कौन होगा अभागा जो नहीं मिटना चाहेगा। और उन्हें समझा कैसे जा सकता है ? उन्हें समझने का एकमात्र उपाय है स्वयं को समझना। बिना स्वयं को जाने उन्हें जाना नहीं जा सकता है। मैंने खुद पाया है कि मैं जितना स्वयं के निकट होता जाता हूं वे उतना ही मेरे लिए खुलते जाते हैं। यद्यपि मेरे लिये अभी भी वे रहस्य ही हैं। वे रहस्य हैं क्योंकि मैं स्वयं अपने लिए रहस्य हूं। अभी मृत्यु से मेरा परिचय कहाँ हुआ है। तदापि खिड़की से किरण रोशनी फेंकती है तो इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि बाहर आकाश में सूर्योदय हुआ है। अतः मैं अनुमान लगाता हूं कि अगर मन की किसी स्थिति में ही

मैंने स्वयं को लगातार वर्तमान, कालातीत व अवर्ण्य आनन्द से भरा पाया तो जिसे आत्म-ज्ञान कहते हैं, उसे उपलब्ध व्यक्ति के आनंद की वह या उससे भी उच्च स्थिति अक्षुण्ण हो जाय तो क्या आश्चर्य ? उसमें मृत्यु सदा के लिए मर जाय तो क्या आश्चर्य ? उसमें स्त्री-पुरुष का भेद हमेशा के लिए मिट जाय और परमात्मा ही उसमें वास करने लगे तो क्या आश्चर्य ? बहरहाल मेरे समक्ष अमृत के अनुभव की उनकी बात एक चुनौती के रूप में खड़ी है। एक तीखी प्यास जग गई है उसके लिए। मेरा आग्रह नहीं है पर कामना यही है कि श्री रजनीश जी की वाणी आपके लिए भी चुनौती बन जाय। सच इस चुनौती की स्वीकृति में भी, इस प्यास से भर जाने में भी कितनी मिठास है और कितना अद्‌भुत जागरण है।

नोट : यहाँ यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि १० फरवरी ६७ के पूर्व न तो मैं आचार्य श्री से कभी मिला था और न ही कभी उनके उद्‌बोधन सुनने का अवसर मिला था। सच तो यह है कि काफी दिनों तक यह भी मेरे लिये आश्चर्य का विषय बना रहा कि मैं कैसे और क्यों एक सर्वथा अनजाने व अनसुने व्यक्ति के निवास-स्थान का पता पूँछता उनके पास गया। पर अब वह समझ में आता है। जैसे 'मैगनेट' अपनी शक्ति के अनुरूप एक निश्चित दूरी तक के लोहे को खींच लेता है या लोहा स्वयं खिच आता है, उसी तरह जो साक्षात् सत्य होता है उसके पास उस समय वह व्यक्ति उतनी ही तेजी से खिचा चला आता है जो, जब, जितना 'सत्य' के निकट होता है।

● क्या निर्वाण और मोक्ष को भी चाहा जा सकता है ? निर्वाण को चाहने से अधिक असंभव बात और कोई नहीं है क्योंकि जहाँ कोई चाह नहीं है, वही निर्वाण है। चाह ही अमुक्ति है तो मोक्ष कैसे चाहा जा सकता है ? किन्तु मोक्ष को चाहने वाले व्यक्ति भी हैं और तब स्वाभाविक ही है कि उनका तथाकथित सन्यास भी बधन का एक रूप हो और संसार का एक ही अंग। निर्वाण तो उस समय सहज ही, अनचाहा ही, अनपेक्षित ही उपलब्ध होता है जबकि चाह की व्यर्थता को उसके दुख स्वरूप और बंधन को उनके समस्त सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों में जान और पहचान लिया जाता है। चाह की व्यर्थ दौड़ के दर्शन होते ही वह दौड़ चली जाती है। उसका संपूर्ण ज्ञान ही उससे मुक्ति है। और तब जो शेष रह जाता है, वही निर्वाण है।

● एक भ्रम को मिटाने को दूसरा भ्रम पैदा मत करो। एक स्वप्न तोड़ने को दूसरे स्वप्न में जाना उचित नहीं है। ईश्वर की कल्पना मत करो—सब कल्पनायें छोड़कर देखो। जो समक्ष पाओगे वही ईश्वर है।

एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी प्रवचन !

भारत और आज का व्यापारी वर्ग

जो सभ्यता जितनी पुरानी हो जाती है उतनी ही सड़ जाती है, उतनी ही गंदगी उसमें पैदा हो जाती है। जो सभ्यता जितनी पुरानी हो जाती है, उतनी ही बेईमान भी हो जाती है। जैसे छोटे बच्चे सरल और निर्दोष होते हैं, वैसी ही नयी सभ्यताएं सरल और निर्दोष होती हैं और जैसे जीवन के अनुभव के बाद बड़े-बूढ़े बेईमान और चालाक हो जाते हैं, वैसे ही सभ्यताएं भी बेईमान और चालाक हो जाती हैं।

भारत की सभ्यता पृथ्वी पर शायद जीवित सभ्यताओं में सबसे पुरानी सभ्यता है और इसलिये सबसे ज्यादा बेईमान और सबसे ज्यादा गंदी हो गई है। जब कोई सभ्यता सड़ती है तो उसकी सड़ाँध और उसकी दुर्गंध उसके व्यापारी वर्ग से सबसे ज्यादा आनी शुरू होती है। इसके पीछे कारण है। समाज का खून है धन। धन समाज की नसों में दौड़ता है खून की तरह और जब खून सड़ जाय तो सारे समाज के शरीर पर फोड़े और बीमारियाँ प्रगट होनी शुरू हो जाती हैं। जब किसी आदमी के पूरे शरीर पर फोड़े, फुंसियाँ और मवाद फैलने लगे तो जान लेना चाहिये कि भीतर खून सड़ गया होगा। व्यापारी समाज की रीढ़ है और धन समाज का खून है और जब सभ्यता पुरानी होती चली जाती है तो खून सड़ जाता है और सारी दुर्गन्ध व्यापारी वर्ग से निकलनी शुरू ही जाती है।

भारत की सभ्यता की यह सड़ाँध भारत की जो अर्थ व्यवस्था है उससे शुरू हो गयी है। और यह दुर्गन्ध आज ही निकल रही है ऐसा नहीं है। सैकड़ों वर्षो से निकल रही है। क्योंकि हमने नये को पैदा करने की क्षमता खो दी है, पुराने को दफनाने की क्षमता खो दी है। हम न पुराने को मरघट पर पहुंचा सकते हैं और न जन्म देने की प्रसव की पीड़ा झेलने की ही हमारी हिम्मत है। इसलिए पहली बात तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि भारत के व्यवसायी और व्यापारी वर्ग का कोई कसूर नहीं है। भारत के नेता व्यापारी को गाली देते हैं और भारत के व्यापारी भारत के नेताओं को गाली देते हैं। लेकिन न कसूर व्यापारियों का है और न नेताओं का। भारत की पूरी संस्कृति सड़ गयी है और इसलिए एक दूसरे को दोष देने से कोई भी प्रयोजन नहीं है जब तक कि हम पूरी संस्कृति और सभ्यता को बदलने के लिए आबद्ध न हों। दुनियाँ में हर सभ्यता बदलती रही है, हम सिर्फ नहीं बदले हैं और कुछ लोग हैं जो सोचते हैं कि यह बहुत गौरव की बात है। कुछ लोग हैं जो कहते हैं 'रोम नष्ट हो गया, मिस्र नष्ट हो गया, बेबीलान अब कहाँ है ? सीरिया नष्ट हो गया, हम नष्ट नहीं हुए। कुछ लोग हैं जो सोचते हैं कि यह बड़े आत्म-गौरव की बात है। मैं आपसे कहना चाहता हूं, यह अत्यंत अपमान-जनक है। जो सभ्यताएं नष्ट हो गयीं, उन्होंने नयी सभ्यताओं को जन्म दिया और जो सभ्यता नष्ट नहीं हुई वह सभ्यता मरी हुई जिन्दा है, वह मर गयी है और फिर भी जिन्दा है। हमारा जो अस्तित्व है वह मर जाने के बाद का है। स्वभावतः हमारा सब कुछ सड़ जायेगा, हमारा सब कुछ दुर्गन्ध से भर जायेगा। और सबसे ज्यादा यह दुर्गन्ध जहाँ से निकलेगी, वे होंगे हमारे आर्थिक संबंध, हमारे अर्थ की व्यवस्था, हमारे उत्पादन की व्यवस्था, वितरण की व्यवस्था। जहाँ धन है वहाँ सबसे ज्यादा सड़ाँध मालूम होगी। इसलिये पहली बात मैं भारत के व्यापारी समाज के संबध में कहना चाहता हूं कि अगर कोई सोचता हो कि भारत के व्यापारी समाज को भारत की पूरी सभ्यता के संदर्भ से अलग देखा जा सकता है तो वह बहुत गलती में है। भारत का सब कुछ जुड़ा हुआ है, सभी सभ्यताओं का सब कुछ जुड़ा हुआ हैं। सभ्यता एक आर्गनिक होल है, एक इकट्ठी इकाई

है। अगर हम इस पूरी सभ्यता को बदलने को तैयार न हों तो इसका कोई भी अंग बदला नहीं जा सकता है। किसी अंग को बदलेंगे तो वह अंग ऐसे ही होगा जैसे आदमी की टाँग सड़ी हुई अलग निकाल दी जाय और लकड़ी की टाँग लगा दी जाय। लेकिन इस पूरे शरीर को जीवंत अगर करना है तो शरीर को नया करना जरूरी है। यह पहली बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारत का सब कुछ ही दुर्गधयुक्त हो गया है और इसके दुर्गन्धित होने के कई कारण हैं।

भारत हजारों वर्षों से धन की निन्दा कर रहा है और जो समाज धन की निन्दा करेगा वह धन के संबंध में अनिवार्यरूपेण बेईमान हो जायेगा। धन की निन्दा करना खतरनाक है क्योंकि धन की निंदा का एक ही अर्थ होता है कि अगर हम धन की निंदा करेंगे तो धन उत्पादन की दिशा में हमारे पैर बढ़ने बंद हो जायेंगे। भारत का व्यवसायी समाज हजारों वर्षों से उत्पादक का काम नही कर रहा है। व्यवसायी समाज केवल बीच के दलाल का काम कर रहा हैं। उत्पादक, प्रोडेक्टिव भारत नहीं है आज भी। आज भी भारत का बड़ा व्यवसायी-समाज उत्पादक और ग्राहक के बीच में कड़ियों का काम कर रहा है। अगर बम्बई में कोई चीज पैदा होती है और बस्तर के एक गाँव तक पहुंचानी है तो बीच में पच्चीस दलालों की लम्बी शृङ्खला है। पच्चीस दलाल ही भारत के बड़े व्यवसायी समाज का हिस्सा हैं। धन अगर उत्पादन न किया जाय और धन की केवल दलाली की जाय और बीच के मध्यस्थ का काम किया जाय तो हजार करें उपाय लेकिन बेईमानियाँ शुरू हो जायेंगी।

"धन की निंदा करना खतरनाक है, क्योंकि धन की निंदा का एक ही अर्थ होता है कि अगर हम धन की निंदा करेंगे तो धन उत्पादन की दिशा में हमारे पैर बढ़ने बंद हो जायेंगे।"

देश का व्यवसाई वर्ग मूलतः दलाल है। व्यवसायी वर्ग कभी भी ठीक अर्थों में ईमानदार नहीं हो सकता है।

रवीन्द्रनाथ ने अपने बचपन की एक कहानी लिखी है। लिखा है कि मेरे घर में कोई सौ लोग थे और पिता ऐसे आदमी थे कि जो मेहमान घर में आ गया, धीरे-धीरे वह घर का निवासी हो गया फिर वह कभी घर से गया ही नहीं। मेहमान, मेहमान की तरह आये थे, फिर वह घर के आदमी होकर रह गये। सौ आदमी थे घर में कई मन दूध खरीदा जाता था। रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई ने यह पाया कि दूध में पानी मिलाया जा रहा है। तो एक इंस्पेक्टर नियुक्त किया दूध खरीदने वाले के ऊपर, कि वह देखे कि दूध में पानी न मिल पाये। पाया गया कि पानी दूध में और ज्यादा बढ़ गया है। इंस्पेक्टर का हिस्सा भी उसमें बढ़ गया। लेकिन भाई जिद्दी थे। एक और आदमी को नियुक्त किया गया उस इंस्पेक्टर के भी ऊपर चीफ सुपरवाइजर की तरह। लेकिन तीसरे दिन पाया गया कि पानी और भी बढ़ गया है और दूध और कम हो गया है। रवीन्द्रनाथ के पिता ने रवीन्द्रनाथ के भाई को बुलाकर कहा कि यह तुम क्या पागलपन कर रहे हो? तुम जितने दलाल बढ़ाते जाओगे उतना ही पानी बढ़ता चला जायेगा। लेकिन भाई जिद्दी थे, उन्होंने कहा 'मैं रुकावट लगा के ही रखूंगा। अब मैं घर के ही एक आदमी को सबके ऊपर नियुक्त करता हूं।' लेकिन जिस दिन घर का आदमी नियुक्त किया गया उस दिन एक और अजीब घटना घटी। दूध में पानी तो आया ही, एक मछली भी आ गयी, दिखता था सीधे पोखर से, तालाब से पानी भर दिया गया था घर के आदमी का हिस्सा भी उसमें जुड़ गया था।

भारत का व्यवसायी वर्ग हजारों वर्षों से अनुत्पादक है, उत्पादक नहीं है। भारत के व्यवसाय की जो जान है वह दलाली है और जिस देश में दलाली जान होगी, दलाल बढ़ते चले जायेंगे, दलाली बढ़ती चली जायेगी और ग्राहक के ऊपर, उपभोक्ता के ऊपर, कंज्युमर के ऊपर बोझ बढ़ता चला जायेगा। भारत का व्यवसायी

उत्पादक क्यों नहीं है ? पूँछना जरूरी है। भारत तीन-चार हजार वर्षों से धन की निंदा कर रहा है । धन फिजूल है, धन व्यर्थ है, धन कचरा है। लेकिन धन की निन्दा से धन की आकाँक्षा समाप्त नहीं होती। धन की आकाँक्षा के कुछ स्वाभाविक कारण हैं। धन न तो व्यर्थ है न असार है। धन की बड़ी सार्थकता है, उपयोगिता है। धन समाज के बीच बदलाहट के लिए, एक्सचेंज के लिये, विनिमय के लिये अत्यन्त उपयोगी माध्यम है। उस माध्यम के बिना सभ्यता विकसित ही नहीं हो सकती। जिन समाजों ने धन का विकास नहीं किया वे समाज जंगलों में रह रहे हैं, वे विकसित नहीं हो सकते हैं। धन अत्यन्त जरूरी है वह सभ्यता का प्राण है। भारत तीन हजार वर्षों से धन का विरोध करता रहा है। धन का विरोध धन की आकाँक्षा को नष्ट नहीं करता है। धन का विरोध सिर्फ धन के उत्पादक स्वरूप को नष्ट कर देता है और इस तरह की एक लम्बी जमात पैदा करता है जो धन का उत्पादन भी नहीं करती और धन की आकाँक्षी भी है।

हिन्दुस्तान में साधु संतों की लम्बी परम्परा है जो धन का विरोध करते रहे हैं और मजे की बात है कि उन संतों को हिन्दुस्तान का व्यापारी वर्ग ही पालता-पोसता है और इन साधु-संतों की बात भी हिन्दुस्तान का व्यापारी वर्ग ही बैठकर सुनता है। ठीक भी है। आखिर जिनके पास सुविधा है वही साधुओं को सुन भी सकते हैं, जिनके पास सुविधा नहीं है वे साधुओं को सुनेंगे कहाँ से। साधुओं को पालना भी सफेद हाथियों को पालना है। उनको सुनने की सुविधा होनी चाहिए। तो व्यापारी वर्ग जिसके पास पैसा है, वह साधुओं के आसपास इकठ्ठा होता है। और ध्यान रहे, व्यापारी उसी साधु को आदर देगा जो धन का जितना ज्यादा विरोध करे। क्योंकि व्यापारी के मन में धन का लोभ है, वह धन का लोभी है, धन का आकांक्षी है। वह उसे ही सम्मान दे सकता है जो धन का विरोधी हो। धन विरोधी बातें निरंतर साधु संन्यासी समझायेंगे और व्यापारी सुनेगा। इससे धन की आकांक्षा तो नहीं मिटती, हाँ धन के उत्पादक दिशा में जाने का मार्ग जरूर अवरुद्ध हो जाता है। तब दूध में पानी मिलाकर अगर धन आ सकता हो, शक्कर में रेत मिलाकर अगर धन आ सकता हो, दवा की जगह पानी ही भरा जा सकता हो तो फिर इन्ही सरल रास्तों से धन इकठ्ठा करने की कोशिश की जाती हैं।

उत्पादक होना, क्रिएटिव होना, सृजनात्मक होना श्रम माँगता है, लम्बा चिंतन माँगता है। जीवन भर की साधना माँगता है। तब अंत में धन पैदा होगा। धन के हम विरोधी हैं तो कोई सरल तरकीब निकालनी चाहिए। जुआ खेल लेना चाहिए, सट्टा खेल लेना चाहिए। पूरे मुल्क की प्रांतीय सरकारें जुआ खिलवा रही हैं। लाटरी निकाल लेना चाहिये कि एक रुपया लगाकर लाख रुपये मिल जायें, जो कौम बिना कुछ किये रुपये पाना चाहती हो वह कौम खतरनाक है। एक रुपया लगाकर कोई आदमी एक लाख रुपया पाना चाहता हो तो यह आदमी अपराधी है और यह आदमी खतरनाक है और इस आदमी को समाज में पालना तरह-तरह की बीमारियों को पैदा करना है क्योंकि यह आदमी कुछ करना नहीं चाहता है। धन चाहने का अर्थ है सृजनात्मक होना। धन चाहने का अर्थ है उसे पैदा करना लेकिन हम इस मुल्क में पूँचते हैं कि कैसे हम धन इकठ्ठा करें ? पैदा करने की बात कोई भी नहीं पूछता क्योंकि पैदा करने के लम्बे श्रम में कौन लगे ? फिर कोई इतनी अच्छी चीज भी नहीं कि पैदा किया जाय। कोई सस्ती तरकीब से मिल जाता हो तो पा लेना चाहिये क्योंकि साधु समझा रहा है कि धन व्यर्थ है। और व्यापारी सिर्फ साधु की बात इसीलिए सुन रहा है क्योंकि उसके मन में धन का लोभ है और साधु धन का विरोध कर रहा है। अगर साधु कहे कि धन पैदा करो तो व्यापारी साधु का पीछा फौरन छोड़ देगा।

मैंने सुना है मियामीबीच अमरीका में एक साधु की ख्याति थी लोग कहते थे कि वह इतना सरल आदमी है कि अगर दस डालर की नोट को उसके सामने करें और दस पैसे का नया सिक्का उसके सामने आप करें और कहें कि कोई भी आप ले लें तो वह दस पैसे का

नया सिक्का ले लेगा। जो भी उस बीच पूर जाता था वह यह खेल जरूर करता था। साधु के सामने करता दस डालर का और दस पैसे का सिक्का। वह जल्दी से उचक कर दस पैसे का सिक्का ले लेता था। लोग हँसते हुये लौटते थे। एक आदमी बीस साल पहले गया था और बीस साल बाद फिर गया और देखा कि वह बूढ़ा अभी भी यही काम कर रहा है। उसे बड़ी हैरानी हुई। क्या उसे बीस साल में भी अभी तक पहचान न आ सकी। वह इतना सीधा है कि दस पैसे के सिक्के में और दस डालर के नोट में फर्क नहीं कर पा रहा है। रात जब सारे लोग चले गये तो उस आदमी ने जाकर उस बूढ़े से कहा कि बाबा, में बहुत हैरान हूं, क्या तुम अभी भी पहचान नहीं पाते हो? उसने कहा, पहचान नहीं पाता हूं, भलीभाँति पहचानता हूं। तो उस आदमी ने कहा कि लोग जब तुम्हारे सामने नोट करते हैं तो तुम नोट क्यों नहीं ले लेते, दस पैसे क्यों लेते हो? उसने कहा तुम पागल हो। जिस दिन में दस का नोट ले लूँगा उसी दिन खेल खत्म हो जायेगा और अब तक मैंने दस का नोट नहीं लिया. इसलिये मैंने हजारों लाखों नोट इकट्ठे कर लिये हैं। बीस सालों में दस-दस पैसे इकट्ठे करके। वह खेल जारी है। जो लोग आते हैं वे दस रुपए को पकड़ने वाले लोग हैं। वह दस पैसा जो पकड़ता है वह दस रुपया छोड़ता है। उसे त्यागी समझते हैं, समझते हैं भोला है, सरल है। दिन भर काम चलता है और एक दिन मैंने दस का नोट लिया, मन तो मेरा भी होता है कि दस का नोट ले लूँ लेकिन उसी दिन खेल समाप्त हो जायेगा, उसी क्षण समाप्त हो जायेगा।

अगर किसी साधु ने धन की बात की तो साधु का खेल समाप्त हो जायेगा। साधु का खेल तब तक चलता है जब तक वह धन के विरोध में बोल रहा है। साधु का खेल तबतक चलता है जिससे आप जो रहे हैं वह उसके उल्टा बोल रहा है। वह आपके जीने में सहयोगी नहीं हो रहे हैं। उसके विचार, आपके जीवन में बाधा डाल रहे हैं। और सबसे बड़ी बाधा जो साधु ने डाली है धन के संबंध में। धन को असार कहके, धन की निन्दा करके उसने धन के संबंध में बीमारी पैदा कर दी है। धन के संबंध में सुव्यवस्था पैदा न हो सकी। जिन चीजों को हम असार समझ लेंगे उनकी हम व्यवस्था क्यों करेंगे? जिसको हम कचरा समझ लेगे उसके संबंध में हम सोचेंगे क्यों। लेकिन धन का काम तो जारी रहेगा। अगर कोई ऐसा आदमी इस गाँव में आये और लोगों की समझाये कि बीमारियाँ असार हैं तो बीमारियों के संबंध में सोचना बन्द हो जायेगा लेकिन बीमारियाँ बन्द नहीं हो जायेंगी, बीमारियाँ खतरनाक हो जायेंगी क्योंकि कोई अगर बीमारियों के संबंध में न सोचेगा तो दूर करना भी मुश्किल है। स्वास्थ की व्यवस्था करना भी मुशकिल है। धीरे-धीरे पूरा गाँव बीमार हो जायेगा। इस देश को समझाया जा रहा है कि धन व्यर्थ है। धन व्यर्थ होने के कारण सारा देश धन के लिये बीमार हो गया है। इसलिये हम कोई सुनियोजित व्यवस्था, ऐसी कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं उत्पन्न कर पा रहे हैं जहाँ धन मित्र बने, शत्रु नहीं,। जहाँ धन लोगों की जिन्दगी में चमक लाये, उदासी नहीं। इस देश में धन लोगों की जिन्दगी में चमक नहीं लाता है। जिनके पास धन नहीं है वे धन के न होने से पीड़ित हैं और जिनके पास धन है वे धन के होने से पीड़ित हैं। किसी की जिन्दगी में कोई चमक नहीं आती। क्योंकि दूसरी बात हिंदुस्तान की संस्कृति सिखाती है सादगी–सादा जीवन, उंचा विचार। सिम्पल लिविंग हाई थिंकिंग। यह एकदम बकवास है–सादी जिन्दगी और ऊँचा विचार। सच बात यह है ऊँची जिन्दगी और ऊँचा विचार। हाँ, ऊंची जिन्दगी के बाद एक वक्त ऐसा आता है कि सादी जिन्दगी सारी ऊँची जिन्दगियों से ऊंची मालूम होने लगती है। लेकिन अगर कोई ऊँची जिन्दगी को जानता नहीं तो सादी जिन्दगी सिर्फ झूठा संतोष है हिन्दुस्तान को झूठे संतोष की बातें सिखायी जा रही हैं। इसका दोहरा परिणाम हुआ है कि गरीब, गरीब रह गया है क्योंकि वह कहता है क्या करना है और अमीर धन भी इकट्ठा कर लेता है लेकिन रहता है गरीब की तरह से।

भारत का व्यवसायिक, धनिक, भारत में जिनके पास पैसा है वह भी रहते गरीब की भाँति हैं। धन को भोगते नहीं हैं। और ध्यान रहे, जिस समाज में धन

को इकट्ठा करने वाले लोग पैदा हो जाते हैं, उस समाज की पूरी जिन्दगी सड़ जाती है। धन को भोगने वाले लोग चाहिये जो धन को खर्चा करते हों, जो धन को फैलाते हों, जो धन को रोकते न हों। हिन्दुस्तान में धन रोका जा रहा है। हिन्दुस्तान में आदमी धन इसलिए कमाता है कि तिजोरी में बन्द करे। क्योंकि सादी जिन्दगी पर जोर है। तो धनी एक काम करता है। तिजोरी को बड़ा करते चले जाओ। धनी आदमी ठेठ गरीब की तरह जीता है। बल्कि लोग तारीफ करते हैं कि फलां आदमी बड़ा ऊँचा है। इतना बड़ा आदमी है लेकिन रहता है गरीब की भाँति। फिर बेवकूफ है वह पागल है। अगर धन कमाकर गरीब की तरह रहना है तो बिना धन कमाये गरीब की तरह मजे से रहा जाता है। धन कमाने की जरूरत क्या है। और वह आदमी समाज के लिए खतरनाक भी है क्योंकि जितना धन तिजोरी में बन्द हो जाता है उतना धन समाज के लिए वैसा ही हो जाता है जैसे हाथ या पैर में बहता हुआ खून कहीं रुक जाय शरीर में खून दौड़ रहा है, जितनी तेजी से दौड़ रहा है उतना आदमी जवान होगा। जितना सरलता से दौड़ रहा है, बिना बाधा के दौड़ रहा है उतनी आदमी के शरीर में ताकत होगी। जहाँ खून रुक जायेगा वहीं, वहीं बुढ़ापा शुरू हो जायगा और अगर खून की धारा कहीं रुक गयी तो पैरेलिसिस हो जयेगा, तो वहाँ लकवा लग जायेगा। हिन्दुस्तान का व्यवसायी समाज पैसा कमाता है और लकवा बन जाता है, पैरेलाइज्ड हो जाता है। पैसा कमा के तिजोरी में बन्द कर देता है। पैसा खून है जो दौड़ना चाहिये। हिन्दुस्तान को समझाया गया है कमाओ जरूर लेकिन खर्च मत करो। फिर कमाना किसलिए ? कमाओ और जितना कमाओ उससे ज्यादा खर्च करो ताकि खून गतिमान हो, ताकि खून दौड़ता रहे। अगर मेरे पास एक रुपया है और मैं तिजोरी को बन्द कर लूँ तो वह एक ही रुपया रह जाता है और अगर मैं उसे चला दूं और दिन भर में वह दस हाथों में गुजर जाय तो वह एक रुपया दस रुपया हो जाता है। वह एक रुपया दस आदमियों के जेबों को गर्म करता है। वह एक रुपया दस आदमियों के पास दस रुपया बनता है क्योंकि एक रुपया जिन्दा है। वह भाग रहा है, दौड़ रहा है।

जिस समाज की संपत्ति जितने जोर से दौड़ती है वह समाज उतना संपन्न होता चला जाता है। लेकिन हिन्दुस्तान में एक पागलपन है और वह यह है कि धन कमाओ तो जरूर लेकिन उसे खर्च मत करना, रहना गरीब की तरह, सादे विचार रखना, सादे मकान में रहना। सादे कपड़े पहनना। लेकिन फिर इस धन का दिखावा कहाँ करोगे ? इस धन का फायदा। इस धन का क्या होगा ? तो इस धन को गलत जगह दिखाना। लड़की की शादी हो, लाख रुपये आग में फूँक देना। जोकि बिल्कुल पागलपन है। फुलझड़ी, फटाके छोड़ देना हजार रुपये के। मैंने सुना है एक आदमी ने पचास हजार रुपये के इनविटेशन कार्ड छपवाये। वह जो सादा विचार, सादी जिन्दगी है वह बदला लेगी और बदला लेगी इस तरह कि गाँठ पैदा हो जायेगी। वह फूल के कहीं से निकलेगी तो घाव बनेगी, फूलेगी, मवाद होगी। हिन्दुस्तान में कोई भी आदमी धन को भोगता नहीं है।या तो गरीबी भोगता है या धन की मवाद इकट्ठी होती है। और फूटती है या तो शादी में फूटेगी यह पिता के मरने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी तब फूटेगी या कुछ और कोई उपद्रव खोजना पड़ेगा। मंदिर बनवाना पड़ेगा या किसी साधु की जन्म तारीख खोजनी पड़ेगी, वर्षगाँठ मनानी पड़ेगी या किसी साधु का स्वर्ण दिवस मनाना पड़ेगा या कुछ और ओर वहां लाखों रुपये फूंकने पड़ेंगे। हिन्दुस्तान भी रुपये खर्च करता हैं लेकिन गलत जगह खर्च करता है और गलत जगह इसलिये खर्च करता है कि ठीक जगह खर्च करने की व्यवस्था पर हमने रुकावट लगायी है और यह ध्यान रहे, जो लोग धन इकठ्ठा करने वाले हो जाते हैं वह बहुत खतरनाक हो जाते हैं। जो आदमी धन को जितनी उत्फुल्लता से खर्च कर सकता है वह आदमी उतना ही प्रसन्न होगा। कंजूस कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकता। जो आदमी जितना जोर से पैसे फेंक सकता है वह उतना आनंदित होगा और ध्यान रहे जो जितना प्रसन्न होगा और जितना आनंदित होगा उतना प्रोडेक्टिव होगा, उतना वह उत्पादनशील होगा। जो आदमी जितना

उदास होगा, जितना गंभीर होगा, जितनी मुट्ठी बन्द होगी उतना कम उत्पादक होगा, कम प्रोडेक्टिव होगा, शोषक होगा, एक्सप्लाटेटिव होगा लेकिन प्रोडेक्टिव नहीं होगा। और यह भी ध्यान रहे कि जो धन को रोकेगा वह आदमी गलत दिशाओं से धन को बहाने की कोशिश करेगा और यह भी ध्यान रहे कि जो आदमी उत्पादन नहीं कर सकता धन का, वह बेईमानी से धन को इकट्ठा करने की सारी चेष्टाएं करेगा। हिन्दुस्तान में धन की उत्पादनशीलता पर सब तरफ से रोक लगा दी गई है। कोई सम्मान नहीं है धन के उत्पादन करने वाले का। हिन्दुस्तान में अगर एक आदमी प्रोफेसर है और उससे पूछिये कि आप क्या करते हैं तो कहता है कि मैं प्रोफेसर हूं। कोई आदमी अगर इंजीनियर है तो वह कहता है कि मैं इंजीनियर हूं। कोई आदमी अगर मिनिस्टर है तो वह कहता है कि मैं मिनिस्टर हूं। लेकिन एक व्यवसायी, एक व्यापारी थोड़ा सा हेजिटेट करता है, थोड़ा झिझकता है। उससे पूछिये, आप क्या करते हैं ? आश्चर्य की बात है व्यवसायी तो समाज की रीढ़ है। वह धन पैदा करने का मार्ग है। वह धन पैदा करने की बुद्धिमत्ता है। वह 'विजडम' है जहाँ से धन पैदा होता है। लेकिन वह जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान वर्ग है वह कहता है, कुछ नहीं जी व्यवसाय करता हूं, कोई धंधा करता हूं। इसका कारण ? इसका कारण धन की निन्दा है. धन कमाने वाले की एक निन्दा है और आश्चर्य की बात है कि आज तक समाज को जिन लोगों ने सबसे ज्यादा लाभ पहुंचाया है वह न तो क्षत्रिय हैं, वे न ब्राह्मण हैं। वे हैं व्यवसायी। वे, वह लोग हैं जो धन पैदा करते हैं। लेकिन इस देश में धन के प्रति एक निरादर है। निरादर के कारण वह जो धन को पैदा करने वाला है वह भी आदृत नहीं है और उसका जो सारा का सारा ढांचा हमने खड़ा किया हुआ है वह गलत है। क्योंकि वह सारा ढाँचा मनुष्य को सही दिशाओं में नहीं ले जाता। वह सीधे रास्ते ही नहीं देता। गलत रास्ते बताता है और गलत रास्तों से धन पैदा करने के उपाय करवाता है। हम इस देश में जब तक धन की गरिमा को सीधा सीधा स्वीकार नहीं करेंगे और जब तक हम यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि धन खर्च करने के लिये है। असल में धन का मतलब है खर्च करने की क्षमता। अगर खर्च करना बन्द करते हैं तो धन ही नहीं है वह मिट्टी है। उसे खर्च करते हैं इसलिए वह धन है और धन जितना खर्च होता है उतना फैलता है और विस्तीर्ण होता है, समाज को समुन्नत करता है।

तीसरी बात है कि हिन्दुस्तान के व्यवसायी को वह जो साधु संतों के आसपास इकट्ठा होकर धन की, व्यवसाय की, जीवन की निन्दा सुन रहे हैं वह बन्द करनी चाहिये। उनसे जो जीवन के गलत सूत्र सुन रहे हैं उनसे सुना जा रहा है, साधु समझा रहा है,

"कोई आदमी अगर चादर के भीतर पैर पसारेगा तो चादर कभी बड़ी नहीं हो सकती। आवश्यकता बढ़ती है, चादर छोटी पड़ जाती है। पैर आगे निकल जाते हैं, तो बड़ी चादर करने का विचार करना पड़ता है।"

चादर जितनी हो उससे ज्यादा पैर कभी नहीं पसारने चाहिए और ध्यान रहे, व्यवसाय का सूत्र यह है कि चादर जितनी हो उससे हमें ज्यादा पैर पसारने चाहिये। कोई आदमी अगर चादर के भीतर पैर पसारेगा तो चादर कभी बड़ी नहीं हो सकती। बड़ा होने की जरूरत नहीं। चैलेंज नहीं, चुनौती नहीं। जब कोई आदमी चादर के बाहर पैर फैलाता है तो पैर पर ठण्ड लगती है तब वह चादर को बड़ी करने का विचार करता है। अमरीका में या पश्चिम में जो धन का आकाश से एकदम अम्बार टूट पड़ा है वह आकस्मिक नहीं है, वह बिल्कुल आकस्मिक नहीं है। उसके पीछे कारण हैं। उन्होंने यह बात समझ ली है कि हम जितनी आवश्यकता को बढ़ायेंगे उतनी आवश्यकता माँग करती है कि पैदा करो। आवश्यकता बढ़ती है तो उत्पादन बढ़ता है। आवश्यकता बढ़ती है, चादर छोटी पड़ जाती है। पैर आगे निकल

जाते हैं तो चादर बड़ी करने का विचार करना पड़ता है।

हिन्दुस्तान हजारों वर्षों से इस तरह की नासमझी की बातें सुनता है कि जितनी चादर हो उससे कम पैर पसारो। अगर तुम बड़े हो जाओ तो और पैर अपने पेट पर लगाकर सो जाओ, लेकिन चादर के बाहर पैर मत निकालना। ये बातें हमें सुनने में अच्छी लगती हैं। क्यों ? ये बातें आलस्य को प्रोत्साहन देती हैं। ये बातें हमें सुनने में अच्छी लगती हैं क्योंकि ये बातें हमें खतरनाक रास्ते पर जाने से बचा लेती हैं। ये बातें सुनने में अच्छी लगती हैं, क्योंकि संघर्ष और तनाव से हमें बचा लेती हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, बिना तनाव के बिना संघर्ष के, बिना असंतुष्ट हुये इस जगत में कुछ भी पैदा नहीं होता है और यह भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जो आदमी कभी असंतुष्ट नहीं हुआ वह आदमी संतोष के राज भी कभी नहीं समझ पायेगा। यह बात उल्टी मालूम पड़ेगी लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि जो आदमी दिन में ठीक से जागा है वही आदमी रात में ठीक सोता है। और जिस आदमी ने दिनभर मेहनत और मजदूरी की है वह आदमी जितना विश्राम करता है; वह उतना कभी नहीं विश्राम करता है, जिसने दिन भर कोई श्रम नहीं किया। श्रम करने वाला विश्राम करने की क्षमता जुटा लेता है और मैं आपसे कहता हूं कि असंतोष होने वाला संतोष होने की क्षमता जुटाता है। और जो आदमी जितने तनाव में जीता है वह उतना शान्त होने की ताकत इकट्ठी करता है और जो आदमी तनाव से भागता है, असंतोष से भागता है, सब तरह के संघर्ष से भागता है वह आदमी शान्ति को कभी भी नहीं उपलब्ध होता है, वह आदमी सिर्फ मर जाता है, मुर्दा हो जाता है। मरघट की शान्ति एक बात है। मंदिर की शांति बिलकुल दूसरी बात है। मंदिर की शान्ति जीवन के लम्बे संघर्ष का अंतिम क्षण है। मरघट की शान्ति कोई अभी चाहे मर जा सकता है और शान्त हो सकता है।

हिन्दुस्तान में मरने की तरकीब सिखायी जा रही है, जीने की तरकीब नहीं। और इसका स्वाभाविक परिणाम हुआ है। और वह व्यवसायी वर्ग पर बहुत जोर से हुआ है। क्योंकि वह मरने की तरकीब सुनने की सुविधा व्यवसायी के पास है। वह सुन रहा है, वह मंदिर बना रहा है। और एक उल्टा मंदिर हमने जीवन का खड़ा कर लिया है। मैं आपसे कहूं, हिन्दुस्तान में, हिन्दुस्तान के व्यवसाय में, हिन्दुस्तान के अर्थतंत्र में हमने एक उल्टी व्यवस्था की है। शीर्षासन कर रहे हैं हम। और वह शीर्षासन यह है कि हमने पदार्थ को, मैटेरियल को, मेटेरियलिज्म को बिल्कुल इन्कार किया हुआ है। हम कहते हैं मेटेरियलिज्म वह पश्चिम के लोग भौतिकवादी हैं। हम अध्यात्मवादी हैं। लेकिन ध्यान रहे भौतिकवाद जीवन का पहला आधार है। जैसे कोई मंदिर की नींव भरता है तो नींव में तो पत्थर भरने पड़ते हैं लेकिन उपर कलश पर स्वर्ण का कलश लगाते हैं। कोई अगर स्वर्ण का कलश नींव में लगा दे और नींव के पत्थर ऊपर रखने की कोशिश करे तो वह मंदिर तो गिरेगा ही, उसके पुजारी भी मरेंगे, उसकी पूजा करने वाले भी मरेंगे। भारत हजारों साल से उल्टे सिर खड़े होने की कोशिश कर रहा है। हम अध्यात्म को बुनियाद में रखते हैं, यह गलत है। अध्यात्म है अंतिम। वह शीर्ष है, वह शिखर है। जिसको हम मैटेरियलिज्म कहते हैं, भौतिकवाद, वह प्रथम है। भारत इन्कार कर रहा है भौतिकवाद को। और इसलिए भारत से ज्यादा भौतिकवादी समाज खोजना मुश्किल है। भारत में हम त्याग की इतनी बातें करते हैं। एक तरफ व्यापारी त्याग की बात कहेगा, एक तरफ वह नंगे खड़े हुये आदमियों की पूजा करेगा। और दूसरी तरफ ? दूसरी तरफ इस बुरी तरह से वह धन खींचेगा कि उसमें सारी मनुष्यता निचुड़ जाय, सारी आदमियत निचुड़ जाय। इसकी फिक्र नहीं करेगा। एक तरफ वह खून चूस लेगा और दूसरी तरफ दानवीर हो जायेगा। और इन दोनों में कोई कंट्राडिक्शन नहीं है, कोई विरोधाभास नहीं है। थोड़ा सोचने जैसा है।

मैं एक घर में ठहरा था। उस घर में ऊपर एक पश्चिमी परिवार रुका हुआ था कुछ दिनों से। तो पश्चिमी परिवार के सम्बन्ध में जब भी मैं उस घर में गया, उस घर के लोगों ने कहा निरे भौतिकवादी हैं।

सिवाय गाने बजाने खाने-पीने के और कुछ नहीं। बारह-बारह बजे रात तक नाचते रहते हैं, यह सब क्या पागलपन है। निरे भौतिकवादी हैं। इन्हें सिवाय शरीर के और कुछ भी नहीं है। दो वर्ष बाद फिर गया। ऊपर के मेहमान घर छोड़कर चले गये थे। वे अपने देश वापिस लौट गये थे। उस घर के लोगों से मैंने पूछा, क्या ऊपर के लोग चले गये। तो उन्होंने कहा चले गये। और बड़ी हैरानी की बात है, जो बर्तन माँजने वाली थी उसको वे अपने बर्तन दे गये और बिलकुल स्टेनलेस स्टील के बर्तन हैं, जो घर में बुहारी लगाता था उसे अपना रेडियो दे गये। वे अपने सब सामान बाँट गये। वे कुछ ले नहीं गये, बड़े अजीब लोग थे। मैंने उनसे पूछा, तुम्हें भी कुछ दे गये हैं ? उनकी आँखों में तो मुझे लार टपकती मालूम पड़ी। उनको वे कुछ दे नहीं गये थे। शायद संकोच में सोचा होगा कि उनको कुछ देने के लिये कहना ठीक नहीं, शायद वे अपमान समझें क्योंकि उनसे बहुत ज्यादा उनके पास है। वे कहने लगे नहीं, हमें क्या जरूरत है लेने की। लेकिन उनकी आँखें, उनके चेहरे को देखकर लगा, भारी दुखी हैं वे। वह जो बरौनी को दे गये हैं बर्तन अगर इनको दे गये होते तो बहुत अच्छा होता। तो उन्होने कहा कि नहीं हमें कुछ भी नहीं, दे गये। लेकिन उनकी लड़की ने मुझसे कहा कि नहीं नहीं मम्मी, उनकी एक चीज हमारे पास है। मम्मी ने डाँटने की कोशिश की लेकिन उस लड़की के समझ में नहीं आया। उसने कहा कि वे रस्सी छोड़ गये थे। कपड़े बाँधने की रस्सी होगी नाइलोन की उस लड़की ने कहा कि वे रस्सी छोड़ गए तो मम्मी उसको खोल लायी हैं। वह एक चीज हमारे पास भी छूट गयी है।

वे भौतिकवादी थे, ये आध्यात्मवादी लोग हैं। ये रोज सुबह पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, मंदिर जाते हैं, साधु के चरण पड़ते हैं। साधु को घर बुलाते हैं, उससे प्रवचन सुन लेते हैं ये आध्यात्मिक हैं, वे भौतिकवादी लोग हैं। मैं आपसे कहता हूं, वह ऊपर का परिवार कभी आध्यात्मवादी हो सकता है लेकिन यह नीचे का परिवार कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकता। असल में जीवन के सत्यों को हम अस्वीकार कर रहे हैं। इसलिये भारत का व्यवसायी नितान्त भौतिकवादी है। मंदिर बनाता है, पूजा करता है, प्रार्थना करता है, साधु के पीछे चक्कर लगाता हैं, तीर्थ करता है, हजारों लाखों रुपये खर्च करता है। और दूसरी तरफ उसके जीवन में ? उसके जीवन में धर्म जैसी, सुसंस्कृती जैसी, अध्यात्म जैसी कोई चीज नहीं दिखायी पड़ेगी। जब वह दुकान पर मिलेगा तब वह आदमी बिल्कुल दूसरे तरह का है। ये दोहरी बातें क्यों हैं। इनके पीछे कुछ कारण हैं। हमने जीवन की सच्चाई से इन्कार किया हुआ है। मैं आपसे कहना चाहता हूं अगर भारत को एक अच्छा व्यवसायिक समाज पैदा करना हो और एक अच्छा अर्थतंत्र पैदा

"मैं आपसे कहना चाहता हूं अगर भारत को एक अच्छा व्यवसायिक समाज पैदा करना हो, और एक अच्छा अर्थतंत्र पैदा करना हो तो हमें धन की महत्ता को और भौतिकवाद की उपयोगिता को परिपूर्ण रूप से, पूरे मन से स्वीकार करना होगा।

करना हो तो हमें धन की महत्ता को और भौतिकवाद की उपयोगिता को परिपूर्ण रूप से पूरे मन से स्वीकार करना होगा। यह मान लेना होगा भौतिकवाद की अपनी जगह है और कोई आदमी अगर धन कमाने जा रहा है तो वह निन्दा योग्य नहीं। कोई आदमी अगर गलत ढंग से धन कमाने जा रहा है तो वह निन्दा योग्य है। ठीक ढंग से, उत्पादक ढंग से कोई आदमी धन कमाने जाता है तो वह आदर योग्य है। कोई आदमी धन को इकट्ठा करता है तो निन्दा के योग्य है, कोई आदमी अगर धन को जीता है, भोगता है तो निन्दा के योग्य नहीं है। और रोक लेने वाला खतरनाक है, भोग लेने वाला खतरनाक नहीं है। वह धन को फैला देता है और हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा कि जिन्दगी में शरीर की, बाहर की जिन्दगी की जो जरूरतें हैं उनको जबरदस्ती रोक के अगर हमने संतोष करने की कोशिश की तो वे

जरूरतें उल्टे रास्ते से पीछे के रास्ते से प्रगट होनी शुरू हो जाती हैं और सारे व्यक्तित्व को बेईमान कर देती हैं। अगर हम अपनी जरूरतों को उनके ठीक रास्ते से निकलने दें तो व्यक्तित्व एक ईमानदारी को, एक आनेस्टी को उपलब्ध होता है। भारत का व्यवसाय पूरा बेईमान है। कारण ? कारण एक है और वह यह है कि जीवन के जो सहज द्वार हैं वह सब हम बन्द किये बैठे हैं और पीछे के द्वार के सिवाय निकलने का कोई रास्ता नहीं छोड़ा है। पीछे के दरवाजे से ही निकलना पड़ेगा। सीधे दरवाजे पर हम किसी को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। और ध्यान रहे, अगर इस तरह की प्रवृत्ति तीन चार हजार वर्षों तक चल जाय तो हम भूल ही जाते हैं कि यह हमारे प्राणों में प्रविष्ट हो गयी है। हमारे खून, हमारी हड्डी, माँस, मज्जा में मिल गई है। अब चाहे हम व्यवसायी हों और चाहे हम शिक्षक हों, चाहे हम नेता हों और चाहे हम कोई भी हों हमारे खून में वह सब इकट्ठा मिल गया है। इस इकट्ठे को बदलने के लिये कुछ किया जाना जरूरी है, पहली बात।

अमरीका की उम्र मुश्किल से तीन सौ वर्ष है। रूस की सभ्यता की उम्र मुश्किल से पचास वर्ष है। क्या आपने कभी ख्याल किया है ? दुनिया की सारी पुरानी सभ्यताएं अमरीका की नयी सभ्यता के सामने एकदम कमजोर और नपुंसक सिद्ध हो गयी हैं। क्यों ? नये ने पुराने सारे जाल से मुक्त कर दिया। पुराना कुछ था ही नहीं, सब नया है। रूस ने पचास साल पहले अपने पुराने को नमस्कार करलिया। पुराने सारे कचरे से इन्कार कर दिया। फिर नया खून दौड़ा है। पचास सालों में रूस ने एक नयी जिन्दगी खड़ी कर ली है। अमरीका कमजोर पड़ रहा है रूस से क्योंकि रूस और भी नया है। और ध्यान रहे आने वाले दस सालों में रूस चीन से कमजोर पड़ जायेगा क्योंकि फिर पुराना पड़ने लगा है। चीन और भी ज्यादा नया है। भारत इतना पुराना है कि दुनियाँ में किसी भी सभ्यता के मुकाबले आज खड़ा नहीं हो सकता। पुराना होने से हम सड़ जाते हैं। हमें तय करना पड़ेगा कि हमें भी नये होने की हिम्मत जुटानी है। हमें भी एक तिथि तय करके पुराने को नमस्कार करके आगे बढ़ना होगा और ध्यान रहे जीवन में इतनी ऊर्जा छिपी है कि अगर चुनौती खड़ी हो जाय तो शक्ति पैदा हो जाती है लेकिन चुनौती खड़ी न हो तो शक्ति पैदा नहीं होती। जर्मनी में दूसरे महायुद्ध के बाद लोगों का ख्याल था कि अब जर्मनी कभी भी खड़ा नहीं हो सकेगा। लेकिन अब जाकर जो मित्र देखकर लौटे हैं वे कहते हैं कि कोई कह नहीं सकता कि दूसरा महायुद्ध कभी हुआ। लोग सोचते थे जर्मनी हमेशा के लिये टूट गया है। हजारों साल लग जायेंगे लेकिन अब कोई जर्मनी जाकर देखता है। वह फिर ताजा हो गया। यह बात क्या है ? और हम ? इस देश ने महाभारत के बाद कोई बड़ा युद्ध नहीं देखा। महाभारत हुए अन्दाजन पाँच हजार वर्ष तो हुये होंगे। और बड़ा हुआ हो यह तो बिल्कुल संदिग्ध है। क्योंकि वह जिस कुरुक्षेत्र के मैदान में हुआ था वह इतना छोटा है कि उस मैदान में उतने लोग नहीं आ सकते।

पाँच हजार साल पहले एक महायुद्ध हुआ था। उसके बाद कोई बड़े युद्ध से हम नहीं गुजरे। लेकिन हमसे ज्यादा मरा हुआ कोई समाज नहीं है। बात क्या है ? बात यह है कि हम पुराने से पुराने होते चले गये हैं। हमने पुराने मकान को ही जगह जगह से टीप दे दिये हैं। कभी कोई खिड़की टूटती है तो उसको लकड़ी लगाके सम्हाल देते हैं। कभी कोई दीवाल गिरने लगती है तो थोड़ी सी नयी ईंटें जोड़कर लगा देते हैं। पूरा मकान धीरे–धीरे सब तरफ से सुधारा जा चुका है। सब पुराना है। तो पुराने को सम्हालने के लिए जो लगाया गया था वह भी पुराना हो गया है। उसको भी सम्हालने के लिये हमने कुछ लगाया। ऐसा समझिये कि एक आदमी की आँख खराब हो जाय तो चश्मा लगा दिया। वह चश्मा भी खराब हो गया। उसको फेंका नहीं। उस चश्मे को सुधारने के लिये उसके ऊपर एक और चश्मा लगाया। वह चश्मा भी खराब हो गया है, अब उस आदमी के पास इतने चश्मे हो गये हैं कि उनको लेकर न तो वह चल सकता है, न उठ सकता है, न बैठ सकता है और इतनी लम्बी कतारें हो गयी हैं, चश्मे से कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता लेकिन उन चश्मों को ढो

रहे हैं। भारत का समाज पुराने से पीड़ित है पुराना हमारी छाती पर बैठा हुआ है। उससे हमारा कोई छुटकारा नहीं हो रहा है। उस पुराने को पूरा का पूरा एक साथ गिरा देना जरूरी हो गया है। उसे आग लगा देने की जरूरत है, उस पूरे को जला देने की आवश्यकता है और उस पुराने ने जो सूत्र हमें दिये हैं उन सूत्रों को भी गिरा देने की जरूरत है। जैसे मैंने कुछ सूत्र कहे वह मैं दोहरा दूं।

एक तो धन की निन्दा खतरनाक है। जो समाज धन की निन्दा करेगा वह धन का लोलुप हो जायेगा। जो समाज धन का विरोध करेगा वह बेईमानी ढंग से धन को इकठ्ठा करने के रास्ते खोजेगा। धन की निन्दा खतरनाक है, धन को सहज स्वीकृति चाहिये। धन सीधा स्वीकृत हो तो लोलुपता नष्ट होती है। और दूसरी बात धन के उत्पादक को धन के उत्पादन पर सम्मान दिया जाना चाहिये। जो धन को इकठ्ठा करे वह नहीं है सम्मानित वह है जो नये धन को पैदा करे। धन पैदा होना चाहिये और व्यवसायी समाज को सिर्फ दलाल के काम से मुक्त हो जाना चाहिये और ध्यान रहे, दलाल का काम बहुत दिन अब दुनियाँ में चल भी नहीं सकता। अब तो जो पैदा करेगा वह मालिक होगा। धन पैदा करना पड़ेगा। धन पैदा हो और धन को तिजोरी में बन्द करने की हमारी पुरानी आदत नष्ट होनी चाहिये। धन को खर्च करने को,, धन को जीने की, धन के फैलाव की क्षमता पैदा होनी चाहिये। आवश्यकतायें बढ़नी चाहिये ताकि हम उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नया धन पैदा करें। जितनी आवश्यकताएं बढ़ेंगीं उतना हम नया धन पैदा करेंगे। खर्च करने की प्रवृत्ति निन्दनीय नहीं होनी चाहिये, स्वीकृत होनी चाहिये। कंजूसी की प्रवृत्ति निन्दित होनी चाहिये और अगर हम यह कर सकते हैं और धन का सहज स्वीकार हो सकता है तो मैं आपसे कहता हूं कि भारत का व्यवसायी समाज भारत में धन की बरसा कर सकता है और ध्यान रहे मजदूर धन पैदा करने में सिर्फ सहयोगी होते हैं। मजदूर धन पैदा नहीं करते। धन तो हमेशा वे लोग पैदा करते हैं जो अत्यन्त बुद्धिमत्ता से नये धन के खोज के मार्ग खोजते हैं मजदूर तो धन पैदा करने में सहयोगी होता है। मजदूर कभी धन पैदा करने के नये आयाम नहीं खोजता। न केवल वह मालकियत का दावा करेगा कि उसने भी धन पैदा किया है। वह दावा भी ठीक है लेकिन ध्यान रहे, धन सदा ही उन थोड़े से लोगों ने पैदा किया है जो उत्पादक धन की दिशाओं में नये आयाम खोजते हैं। भारत नये आयाम नहीं खोजता। अगर हम बैलगाड़ी में जीते हैं तो बैलगाड़ी में ही जीते चले जाते हैं। हम कोई नयी जरूरत पैदा नहीं करते तो नया उत्पादन नहीं होता। नया उत्पादन नहीं होता तो बेकारी बढ़ती चली जाती है। नये लोगों को काम नहीं मिलता। मुसीबत बढ़ती चली जाती है और वह पुराने ही रास्ते से धन पैदा करना मुश्किल होता चला जाता है। तब बेईमानी करनी पड़ती है। तब शक्कर में रेत मिलानी पड़ती है और तब फिर बेईमानी से धन इकठ्ठा करना पड़ता है और इस तरह समाज आगे विकसित नहीं हो सकता। धन के नये नये द्वार खोलें और करोड़ों द्वार पड़े हैं बन्द आज भी जो खोले जा सकते हैं और धन पैदा हो सकता है। धन पैदा करना भी समाज सीख लेता है। वह कभी बेईमानी से धन पैदा नहीं करता। असल में दुनियां में कोई भी आदमी दो पैसे के लिए बेईमान तभी होता है जब उसे कोई उपाय नहीं दीखता कि दो पैसे कैसे पैदा किये जायें। यह हिन्दुस्तान के सारे व्यवसायी समाज को, सारी शक्ति इस दिशा में लगानी चाहिए कि नये धन के द्वार पैदा हों, कैसे नया धन पैदा हो। लेकिन हिन्दुस्तान में साधु समझाता है आवश्यकता मत बढ़ाओ और वह व्यापारी भी बैठकर सिर हिलाता है कि महाराज, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। आवश्यकता नहीं बढ़ेगी, धन कैसे बढ़ेगा। धन नहीं बढ़ेगा तो शक्कर में रेत मिलेगी। फिर दूध में पानी मिलाना होगा क्योंकि वहीं से धन निकालने का एकमात्र रास्ता रह जायेगा। तो अमरीका जैसे मुल्क में कोई सोचता भी नहीं कि इस तरह धन पैदा करो क्योंकि धन के इतने अम्बार लगे हैं पैदा करने के कि कौन इन छोटी बातों में धन को खोजने जायेगा लेकिन हम उल्टी बातों में जी रहे हैं और जो

हमें समझाते हैं ईमानदारी, सच्चाई और हमें अणुव्रतो की कसमें खिलाते हैं, आप हैरान होंगे जो हमें ईमानदारी और सच्चाई की कसमें खिलाते हैं उन्होंने हीं धन का विरोध करके हमें बेइमान बनने के गड्ढे में डाला हुआ है। धन जब तक इफरात न हो तब तक समाज कभी ईमानदार नहीं हो सकता। थोड़े से लोग ईमानदार हो सकते हैं लेकिन थोड़े से लोगों से समाज नहीं चलता है और उन थोड़े से लोगों को भी ईमानदार होना इतना मुश्किल हो जाता है कि वह तपश्चर्या हो जाती है। ईमानदार होना नहीं बेईमान होना तपश्चर्या हो जानी चाहिए। अगर किसी को बेईमान होना हो तो तपश्चर्या करनी पड़ेगी। ऐसा समाज होना चाहिए। ईमानदार होना अत्यंत सरल होना चाहिए। लेकिन ईमानदार होना सरल तभी होगा जब धन ज्यादा हो। अभी हम हवा को तिजोरी में बन्द करके नहीं रखते लेकिन कल अगर हवा कम पड़ जाय तो हम तिजोरी में बन्द करने लगेंगे और साधु संन्यासी समझाने को निकल पड़ेंगे कि हवा का परिग्रह मत करिए, हवा का अपरिग्रह करिए लेकिन कोई सुनेगा नहीं, कहेगा, ठीक आपकी बात ठीक हैं, हम आपके पैर छूते हैं लेकिन परिग्रह से कैसे बच सकते हैं। हवा तो रोकनी पड़ेगी, हवा कम है, तिजोरी में बन्द करनी पड़ेगी। मैं आपसे कहता हूं, दुनियां अपरिग्रही हो जायेगी, अगर दुनियां में धन इतना ज्यादा हो जितनी कि हवा है। और हवा से ज्यादा धन पैदा हो सकता है विज्ञान ने वह व्यवस्था कर दी है कि अब किसी को निर्धन होने की जरूरत नहीं है और किसी समाज को गरीब होने की कोई जरूरत नहीं है, सिर्फ बेवकूफ समाजों को छोड़कर किसी को गरीब होने की अब कोई जरूरत नहीं। धन इतना ज्यादा हो सकता है। कि हवा की तरह मिल सके। आज मिल सकता है। आज हम चाहें तो वह पैदा हो सकता है, उसी दिन दुनिया धन से मुक्त हो जायेगी। और जिस दिन लोगों के मन धन से मुक्त होंगे उस दिन अध्यात्म का इतना बड़ा तूफान, इतनी बड़ी क्रांति पैदा होगी कि धन से मुक्त होते ही आदमी का मन धर्म की तरफ दौड़ना शुरू हो जायेगा। आज तक यह नहीं हो सका और अगर कभी हुआ भी है तो हमेशा बहुत धन के कारण हुआ है। बुद्ध या महावीर राजाओं के लड़के हैं। राम या कृष्ण राजाओं के लड़के हैं। हिन्दुओं के सब अवतार राजाओ के लड़के हैं। कारण सोचा ? कारण है कुछ। जब धन पूरा हो जाता है तो आदमी धन से मुक्त हो जाता है सरलता से धन व्यर्थ हो जाता हूं, धन के ऊपर उठना शुरू हों जाता है। अगर हिन्दुस्तान में धन के लिए इतनी बेईमानी है तो मैं व्यापारियों को, व्यवसाइयों को जिम्मेदार नहीं ठहराता में ठहराता हूं उस बात को जिम्मेवार जिसने हिन्दुस्तान को धन पैदा करने में बाधा दी। हिन्दुस्तान तो बहुत धन पैदा कर सकता है, शायद जमीन पर कोई इतना धन नहीं पैदा कर सकता है उतना धन हम पैदा कर सकते हैं लेकिन यहाँधन की निंदा, धन का विरोध है और धन के त्याग का आदर है। नहीं, इस भाँति हम कभी भी धन पैदा नहीं कर पायेंगे। मैं आपसे अंतिम बात यह कहना चाहता हूं कि इतना धन पैदा करें कि समाज धन से मुक्त हो जाये। इतना धन पैदा करें कि धन के लिए किसी आदमी को बेईमानी, चोरी और ब्लेक मार्केट और रिश्वतखोरी न करनी पड़े। इतना धन पैदा करें कि धन बेमानी हो जाय, धन के लिए किसी को चिन्ता न करनी पड़े और जब कोई समाज धन से मुक्त होता है तो पहली बार कला, धर्म, सस्कृति का जन्म होना शुरू होता है क्योंकि तब आँख ऊपर उठती है और आज यह हालत पैदा हो गयी है कि आज नहीं तो कल अमरीका अपना धन पैदा करने से आदमी को मुक्त कर लेगा। वह स्वचालित यंत्रों से सारा धन पैदा कर लेगा और तब शायद अमरीका में पहली दफा प्रत्येक आदमी उस हालत में हो जावेगा उस एथिलिएंस की हालत में जिस हालत में महावीर या बुद्ध थे। शायद वे भी इस एथिलिएस की हालत में नहीं थे और तब अगर अमरीका में हजारों बुद्ध और महावीर पैदा हो सकें तो आप छाती पीटकर रोते रहना और आपके सन्यासी रोते रहेंगे कि त्याग करो, अपरिग्रह करो। इसकी संभावनाएं रोज बढ़ती जा रही हैं और ध्यान रहे, अमरीका में किसने धन पैदा

(शेष पृष्ठ १८ पर)

पिछले अंकों में आप पढ़ चुके हैं :—

१— युवा पीढ़ी का लक्षण है : खतरे की खोज। भारत में युवा पीढ़ी पैदा नहीं होती, क्योंकि खतरे का आकर्षण नहीं है।

२—हमारा युवक जो विद्रोही कहलाता है वह बहुत छोटी-मोटी चीजों को तोड़कर अपने मन को तृप्ति दे लेता है। जिंदगी में बड़े सवाल और बड़ी समस्यायें हैं : युवकों को मुल्क को खड़ा करना है तो हिंदुस्तान से इस तरह के नाम जो आदमी से आदमी को अलग करते हैं, उनको समाप्त कर देना है। मत तोड़ो फर्नीचर, तोड़ दो हिन्दू-मुसलमान को, जैन-बौद्ध को, ईसाई को, इनको नहीं टिकने देना है।

३—बहुत चीजें तोड़ने को हैं : गरीबी को तोड़ना है। और हमारे मनों में जो एक-एक व्यक्ति की गरीबी को उखाड़ने का ख्याल है, वह गलत है। पूरे समाज की गरीबी मिटाई जा सकती है—और नई-पीढ़ी को कुछ करना है तो व्यक्ति की धारणा को मिटा देना चाहिए। समाज की एक धारणा विकसित करनी चाहिए कि जीवन का सुख-दुख एक सामाजिक घटना है।

४—जिंदगी वैसी ही हो जाती है, जैसा हम सोचते हैं। मैं चाहता हूं कि युवा पीढ़ी जिंदगी को एक गीत समझे। वैराग्य की, भागने की, पलायन की, एस्केप की सारी की सारी धारणाओं को जमीन से उखाड़ फेंक देना चाहिए।

युवकों से वार्ता

• युवा पीढ़ी और भविष्य

दूसरा सूत्र, जीवन मिलता नहीं, बनाना पड़ता है, जीवन एक सृजन है, जीवन एक क्रियेशन है। जिन्दगी मिलती नहीं आसमान से, जैसे आसमान से पानी बरसता है, ऐसे जिन्दगी नहीं मिल जाती, हम पैदा होते हैं, फिर जिन्दगी बनाना पड़ती है, निर्माण करनी पड़ती है अपने हाथ। इस मुल्क में ऐसा समझा जाता रहा है कि बस पैदा हो

गये हैं तो बात काफी हो गई है, अब खा पी लेना है और जिन्दगी गुजार देनी है। नहीं हिरोशिमा में एटम गिरा,जिन लोगों ने हिरोशिमा में ऐटम गिरते देखा और हिरोशिमा की हालत देखी उन्होंने सोचा था कि अब हजारों साल तक हिरोशिमा आबाद नहीं हो सकता। सब जल गया था, एक लाख आदमी राख हो गये थे। मकान जल गये थे। पता लगाना मुश्किल था कि यहाँ कभी बस्ती थी, यहाँ लोग गीत गाते थे, नाचते थे, कभी बच्चे स्कूल जाते थे। पता लगाना मुश्किल था। एक सड़क न बची थी, एक मकान न बचा था। लेकिन आज जाके कोई हिरोशिमा को देखे। हिरोशिमा में बाग लग गये, नई सड़कें बन गईं, नये मकान बन गये, फिर गीत गाये जा रहे हैं। और आज जापान में हिरोशिमा से ज्यादा खूबसूरत नगर नहीं है। अभी मेरे मित्र ने वहां जापान से लिखा कि मैं दंग हूं कि जापानी लोग कैसे लोग हैं। हिरोशिमा के मरघट को उन्होंने फिर खुशी में बदल दिया २० साल के भीतर। आज जापान के दूसरे नगर कहते हैं कि हम बड़ी भूल में रहे कि हम पर एटम नहीं गिरा नहीं तो हम भी नये हो जाते। हिरोशिमा बिल्कुल नया हो गया है। २० साल में उन्होंने सब नया बना लिया है। जिन्दगी बनायी जाती है। आज कोई जापान में जाकर ये नहीं कह सकता कि २० साल पहले इसने युद्ध का इतना विनाश सहा। आज कोई जर्मनी में जाके यह नहीं कह सकता कि २० साल पहिले जर्मनी में १ करोड़ लोग मरे। जिन्दगी फिर बस गई। वे जिन्दगी को बसाना जानते हैं। हम पांच हजार वर्षों से किसी बड़े युद्ध से नहीं गुजरे। हमारा कोई बहुत बड़ा विनाश नहीं हुआ। हम तो कुछ भी नहीं बना पाते हैं, बात क्या है, बात शायद ये है कि बनाने का ख्याल ही हमारे मन में नहीं है। बीज ही हमारे मन में नहीं है कि जिन्दगी बनानी पड़ती है, मिलती नहीं है। जिन्दगी आकाश से नहीं आती, अपने ही भीतर से पैदा करनी पड़ती है, जैसे मकड़ी जाल बुनती है, ऐसा आदमी को जाल बुनना पड़ता है, अपने ही भीतर से, अपने ही श्रम से अपने ही संकल्प से, तो युवा-पीढ़ी के मन में ये बात पहुंचा देना जरूरी है कि तुम जो बनाओगे, वही बन जाओगे। राह मत देखना और नेताओं की तरफ आँखें लगाये मत देखना कि ये कुछ कर देंगे। नेताओं से कुछ भी नहीं होने वाला है। दिल्ली की तरफ आँखें लगाये मत रहना कि दिल्ली कुछ करेगी और सब ठीक हो जायेगा। ये कभी नहीं हुआ और कभी नहीं होगा। एक एक आदमी को मेहनत करनी पड़ेगी। और स्पष्ट रूप से श्रम करना पड़ेगा और संकल्प से श्रम करना पड़ेगा। अगर आज यह मुल्क श्रम में लग जाये तो कोई वजह नहीं है कि हम नई जिंदगी न बना लें। लेकिन हर आदमी दूसरे की तरफ देख रहा है कि कहीं कोई कर दे, कहीं कोई चमत्कार हो जाये। कोई भगवान कृष्ण फिर से पैदा हो जायें जो कह गये थे गीता में कि जब जब मुसीबत आती है, मैं आता हूं। देख रहे हैं कि शायद अब आते होंगे। वे नहीं आयेंगे। ऐसे कमजोर और काहिल लोगों में किसी भगवान के आने की जरूरत नहीं। और मुझे तो लगता है कि काहिल और

"भगवान आता होगा वहाँ जहाँ लोग श्रम करते हैं, भगवान आता होगा वहाँ जहाँ लोग पत्थर तोड़ते हैं और मूर्तियां बनाते हैं। भगवान आता होगा वहाँ जहाँ लोग जिंदगी को निर्माण करने के लिए कुर्बानी करते हैं"।

कमजोर लोगों ने ही गीता में ये वचन जोड़ लिये होंगे। भगवान आता होगा वहाँ जहाँ लोग श्रम करते हैं, भगवान आता होगा वहां जहां लोग पत्थर तोड़ते हैं, और मूर्तियाँ बनाते हैं, भगवान आता होगा वहाँ, जहाँ लोग जिन्दगी को निर्माण करने के लिये कुर्बानी करते हैं। लेकिन कमजोर, अपाहिज और काहिलों के बीच भगवान को आने की जरूरत क्या है। कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती।

तीसरी बात—पहली बात : जीवन एक आनन्द है, दूसरी बात: जीवन को सृजन किये बिना जीवन उपलब्ध नहीं होता। और तीसरी बात : जीवन का सृजन संकल्प से पैदा होता है। 'विल पावर' से पैदा होता है। भारत के युवक के पास कोई संकल्प की शक्ति नहीं है। वह ऐसे खड़ा हुआ है दिशाहारा, जैसे उसके पास कोई संकल्प नहीं

है। वह भी कुछ कर सकता है। ऐसा कोई भाव ही नहीं है। देख रहा है नेताओं की तरफ उनके आगे पीछे पूँछ हिलायेगा, गुरुओं के आगे पीछे फिरेगा। लेकिन वह खुद कुछ कर सकता है. ऐसा प्राणों में कोई भाव नहीं है। और मैं कहता हूं कि खुशामद करके और पूँछ हिलाके राष्ट्रपति भी बन जाना बदतर है और अपने ही संकल्प से सड़क के किनारे बैठकर पत्थर तोड़ना भी बेहतर है। क्योंकि वह संकल्प व्यक्ति की आत्मा को जन्म दे देता है। एक संकल्प चाहिये कि मैं कुछ कर सकता हूं। और जो मैं कर सकता हूं उसे करने में लग जाना चाहिये। स्वामी राम गणित की परीक्षा दे रहे थे, वे एम० ए० के विद्यार्थी थे। और अपने किस्म के विद्यार्थी रहे होंगे। जैसा स्कूल की परीक्षा में प्रश्न आता है, दस प्रश्न दिये होते हैं कोई भी सात हल करिए, लिखा रहता है। वैसे रामतीर्थ को दस सवाल आते तो दस ही हल कर देते और ऊपर गुरु को आज्ञा देते कि कोई भी सात जाँच लीजिये। वैसा विद्यार्थी होना चाहिये। यह क्या कि गुरु कहे कि कोई भी सात प्रश्न हल करिये तो विद्यार्थी में इतनी हिम्मत होनी चाहिये कि दस सवाल हल करे और कहे कि कोई भी सात जाँच लीजिए। राम ऐसा ही करते थे। आखिरी परीक्षा उनकी थी एम० ए० की। एक सवाल हल नहीं होता है। उनका पार्टनर, उनका पड़ौसी, उनके कमरे का साथी घबड़ा गया। उसने कहा तुम एक ही सवाल से उलझे हुये हो। इसी सवाल पर जिन्दगी अटकानी है क्या ? दूसरे सवाल करो, दूसरे भी आ सकते हैं। राम ने कहा : वह सवाल नहीं है। अगर यह आ गया तो ? उसने कहा : छोड़ देना इसे। छोड़ने का विकल्प होता है। राम ने कहा मैं तो छोड़ना चाहता नहीं हूं, कुछ भी। इसे पहले हल करूंगा, क्योंकि इसे न हल करने के कारण मेरा पूरा संकल्प जागा जा रहा है। इसे मैं हल करके ही रहूँगा, क्योंकि यह तो मेरे पूरे व्यक्तित्व को चुनौती हो गई। एक साधारण सा सवाल और मैं हल नहीं कर पाता हूं, अब मेरे लिये कोई सवाल नही दुनिया में बस यही सवाल है। पर उसके मित्र ने कहा : सुबह हुई जाती है और परीक्षा निकट आई जाती है, फिर क्या करोगे। राम ने कहा : वह परीक्षा भी सवाल नहीं है, सवाल तो यह सवाल है जो चुनौती दे रहा है, मेरे संकल्प को, कि मैं इसे हल नहीं कर सकता, एक सवाल को। आज मैं रहूँगा या यह सवाल रहेगा। थोड़ी देर में उनके मित्र ने देखा कि वे अपनी पेटी से छुरी निकालकर चले आ रहे हैं। मित्र ने कहा : छुरी से सवाल हल करोगे, कभी देखा नहीं। राम ने कहा कि तू देख कि आज छुरी से भी सवाल हल होगा। मित्र ने समझा कि दिमाग खराब हो गया। उन्होंने छुरी आकर टेबिल पर गड़ा ली अलार्म घड़ी में पंद्रह मिनिट बाद का अलार्म भरा और हाथ जोड़कर परमात्मा से कहा कि अगर पंद्रह मिनिट के भीतर यह सवाल हल नहीं होता तो यह छुरी मेरी छाती के भीतर होगी। फिर सवाल हल करने में लग गये। मित्र खड़ा होकर देखता रहा। सोचा उसने कौन मारता है छुरी, इस तरह की बातें तो चलती हैं। लेकिन पांच मिनिट में देखा उसने कि राम के माथे से पसीना चुआ जा रहा है, सारा शरीर कंपा जा रहा है। पाँच मिनिट के बाद उन्होंने कलम उठाई और सवाल तीन मिनिट में हल हो गया। राम से उनके मित्र ने कहा : इतनी जल्दी हल कैसे हो गया। राम ने कहा : पूरा जीवन दाँव पर लगा देना पड़ा, तब पूरा संकल्प जगा। जब यह सवाल हो गया कि जिन्दगी मौत का सवाल है तो प्राणों में फिर कोई शक्ति सोई न रह सकी। सारी शक्ति उठ आई। फिर इतनी बड़ी शक्ति के सामने इतना छोटा सा सवाल कैसे टिक सकता था। उसके मित्र ने कहा : यह तो बड़ा टेक्नीक हाथ आ गया। अब कभी दिक्कत होगी तो हम भी एक छुरी अपनी पेटा में रख लेंगे। लेकिन राम ने कहा वह टेकनीक तुम्हारे काम नहीं पड़ेगा। छुरी मारोगे ? अरे उसने कहा : पागल हुये हो, छुरी कौन मारता है। छुरी रख लेंगे साथ में, नहीं हुआ तो नहीं हुआ। तो राम ने कहा फिर संकल्प पैदा नहीं हो सकता है। संकल्प पैदा करने के लिये जीवन को दांव पर लगाने की हिम्मत हो तब संकल्प पैदा होता है। तीसरा सूत्र इससे कहना चाहता हूं जिससे भारत की युवा-पीढ़ी की आत्मा पैदा हो सकती है : वह है एक संकल्प। एक एक व्यक्ति को जो भी वह कर रहा है, पूरे प्राणों को लगाकर उसको करने में जुट जाना चाहिये। जैसे उसके आगे कोई जिन्दगी

नहीं है। उस पर ही सारा दाँव है। तब आप पायेंगे कि आपकी सारी शक्ति जग गई है और आप जो करना चाहते हैं वह करना शुरू हो गया है। और अगर भारत के युवक की शक्ति जग जाये तो भारत के पास जितनी शक्ति हो सकती है, उतनी किसी के पास होने का कोई कारण नहीं है।

लेकिन हम दीन हीन, अभागे, हम सर्वहारा, हम जाकर हनुमानजी के मंदिर में प्रार्थना कर सकते हैं, नारियल चढ़ा सकते हैं, इतना ही संकल्प कर सकते हैं कि भगवान् परीक्षा पास करा देना, पांच आने का नारियल चढ़ा देंगे। ऐसे सब नारियल वाले संकल्प से नहीं चल सकता है मुल्क का काम। दाँव लगाने की बात है और युवक लगाने को तैयार हैं तो हम २० वर्षों में देश के भविष्य को स्वर्ग का भविष्य बना सकते हैं।

समाप्त

संकलन : श्री उदयपालसिंह,
जबलपुर

भारत और आज का व्यापारी समाज

पृष्ठ १४ का शेषांश]

किया है ? अमरीका के थोड़े से व्यवसाइयों ने पिछले दो सौ वर्षों में अनन्त धन की राशि लगा दी है।

भारत में भी यह हो सकता है लेकिन भारत का व्यवसायिक उत्पादक श्रम की तरफ सोचता ही नहीं और धन का सम्मान नहीं करता और उनकी बातें सुनता है जो धन विरोधी हैं और उनके आस पास चक्कर काटता है जो धन के दुश्मन हैं। यही स्थिति अगर जारी रही तो साधु पुजते रहेंगे व्यवसायी बेईमान रहेंगे, धन का विरोध होता रहेगा, देश गरीब रहेगा, त्याग की पूजा होती रहेगी और दूसरे तरफ परिग्रह और बेईमानी और कंजूसी सब इकट्ठी होती रहैगी। यह दोहरा द्वैत मुल्क के प्राणों को नष्ट कर रहा है। इसे छोड़दिया जाना जरूरी है। यह टूट सकता है लेकिन मुल्क के सामने विचार होगा तो ही टूट सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं सिर्फ इसलिए कि आप शायद सोचें, शायद कोई ख्याल पैदा हो जाय और ख्याल काम कर सके और शायद कोई बात समझ में आ जाए और इस देश के लिए, समाज के लिये रास्ता बन सके। ●

(जीवन जागृति केन्द्र बम्बई के सौजन्य से)

मैं नदी में स्नान करने को जाता हूं तो वस्त्र तट पर छोड़ देने होते हैं। परमात्मा में स्नान करने की जिसकी अभीप्सा है उसे भी अपने सारे वस्त्र तट पर ही छोड़ने होंगे—सारे वस्त्र, सारे ओढ़े हुये व्यक्तित्व। उस परम सागर में तो केवल वे ही प्रवेश पाते हैं जो कि बिल्कुल ही नग्न हैं—जिनके पास छोड़ने को अब कुछ भी शेष नहीं रहा है। किन्तु धन्य हैं वे जो सब छोड़ सकते हैं क्योंकि इस भाँति वे वह पा लेते हैं जो कि सबके जोड़ से भी अधिक है। ●

पिछले अंकों में आप पढ़ चुके हैं :

★ नई और पुरानी पीढ़ी के बीच जो संघर्ष है वह जीवन की अनिवार्यता से पैदा हुआ संघर्ष है—उसे रोका नहीं जा सकता। उसे समझपूर्वक पार करना होगा।

★ इस संघर्ष का जो पहला बिंदु है : वह दो तरह की भाषा है। पुरानी पीढ़ी के पास जो भाषा थी, वह धर्म के आधार पर बनी थी, और नई पीढ़ी के पास जो भाषा है वह विज्ञान के आधार पर बनी है। और धर्म तथा विज्ञान के बीच जितनी खाई है, उतनी ही बड़ी खाई पुरानी पीढ़ी तथा नई पीढ़ी के बीच खड़ी हो गई है।

★ धर्म होता है अतीतोन्मुख और विज्ञान होता है भविष्योन्मुख। विज्ञान का सारा विकास सन्देह का विकास है और संदेह ले जाता है भविष्य में और धर्म ले जाता है अतीत में।

★ और अब नई पीढ़ियाँ पुरानी पीढ़ियों की तरफ वापिस नहीं जा सकतीं, लेकिन पुरानी पीढ़ियाँ नई पीढ़ियों की तरफ समझपूर्वक निकट आ सकती हैं। बच्चा मां की तरफ नहीं लौट सकता, लेकिन मां बच्चे के लिए अनजान रास्तों पर छाया बन सकती है।

लीजिए अब आगे पढ़िए अंतिम किस्त में इस ज्वलंत समस्या पर आचार्य श्री की अनोखी जीवन दृष्टि :—

ज्वलँत राष्ट्रीय समस्या और समाधान

नई और पुरानी पीढ़ी : संघर्ष और दिशा

लेकिन यह नहीं हो रहा, और गालियाँ नई पीढ़ी को दी जा रही हैं। और गालियां देने वाले अखबार, किताबें लिखने वाले लोग, उपदेश देने वाले नेता सब पुराने लोग हैं, सब बूढ़े लोग हैं। इसलिये उनकी आवाज सुनी जाती है, उनकी बातें सुनी जाती हैं। नई पीढ़ी के पास सिर्फ विद्रोह की क्षमता है, लेकिन नई पीढ़ी के पास स्पष्ट जीवन को खड़ा करने का और विचार को स्पष्ट फैलाने का कोई उपाय नहीं है। और जब तक उपाय मिलता है, वह नया आदमी भी पुराना हो जाता है। जब तक एक आदमी नेता बनेगा, तब तक वह ५०

साल की उम्र पार कर जायेगा, वह बूढ़ा हो जायेगा। और अपने बेटों से उसका वही संघर्ष शुरू हो जायेगा, जो उसका बाप से था। यह नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी कोई फिक्सड चीजें होती तब भी कोई आसान बात हो जाती। ये कोई निश्चित चीजें नहीं है। जो आज नया है कल पुराना हो जायेगा। और जो आज लड़ाई उसके और पुराने के बीच है, कल फिर नये और उसके बीच चलने लगेगी। इस सारी स्थिति में एक बहुत अन्डर-स्टेंडिग, समझ की जरूरत है तो फैसला पूरा हो सकता है, भाषा समझी जा सकती है।

जैसे मैं उदाहरण के लिये कहूं। द्रोण की हम कथा पड़ते है। एकलव्य को इन्कार कर दिया द्रोण ने क्योंकि वह शूद्र है, तुझे हम नहीं पढ़ा सकेंगे, तुझे हम धनुर्विद्या नहीं सिखा सकेंगे। उस जमाने की बात थी, वह भाषा समझ में आ गई। एकलव्य समझ गया कि शूद्र को कैसे पढ़ाया जा सकता है। बात खतम हो गई। आज का गुरु अगर किसी को कहेगा कि तुम शूद्र हो तुम्हें पढ़ाया नहीं जा सकता, तो यह समझ के बाहर होगा नये आदमी को। परिणाम यह नहीं होगा कि शूद्र नहीं पढ़ाया जायेगा, परिणाम यह होगा क शूद्र को नहीं पढ़ाने वाले को नहीं पढ़ाने दिया जायेगा। यह भाषा व्यर्थ हो गई। यह भाषा गई गुजरी हो गई। आउट आफ डेट हो गई। इस भाषा को अब कोई नहीं समझता। लेकिन एकलव्य समझ गया। और वह चला गया, उसने जरा भी इन्कार नहीं किया। वह मानता था कि मैं शूद्र हूं, आज कोई नहीं मानता कि कोई शूद्र है। उसने स्वीकार कर लिया कि यह तो चला आया है सदा से। उसके मन में गुरु के प्रति कोई क्रोध, कोई बगावत पैदा नहीं हुई। क्योंकि गुरु का जो मूल्य था, जो वेल्यू थी, वह उसे स्वीकृत थी। इसलिये कोई बगावत पैदा नहीं हुई। आज के बेटे को, आज के शिष्य को गुरु का कोई मूल्य स्वीकृत नहीं है। यह हम नहीं समझेंगे तो बड़ी कठिनाई पैदा हो जायेगी। हम द्रोण बने हुये बैठे हैं, तो फिर बहुत कठिनाई है, कैसे बात समझ में आ सकती है। और हमारा गुरु अभी भी द्रोण बना हुआ बैठा है। वह कहता है कि जैसा एकलव्य ने गुरु द्रोण को आदर दिया, वैसा आदर दो। पागल हो गये हो। यह असंभव है। इसे जितने जल्दी समझ लिया जाये, उतना वह आदरित हो सकेगा। गुरु जितनी जिद्द करेंगे कि हमें द्रोण जैसा आदर दो, एकलव्य जैसे शिष्य बनो उतना गुरु का आदर नीचे गिरता जायेगा। क्योंकि गुरु यह नहीं देख रहा कि मूल्य बदल गये, भाषा टूट गई। इतनी बड़ी क्रांति हो गई है बीच में कि मूल्य बदल गये, उसका हमें ख्याल नहीं है, हम सो रहे हैं जैसे। एकलव्य चला गया, उसने उसी गुरु की प्रतिमा बना ली जिसने उसे दुत्कार दिया था और वह उसी प्रतिमा के सामने धनुर्विद्या सीखने लगा। आज तो हम उस गुरु की प्रतिमा रखने को भी राजी नहीं हो सकते जिसने हमारा स्वागत किया हो। द्रोण की प्रतिमा बनाई एकलव्य ने जिस गुरु ने उसे दुत्कार दिया था। क्योंकि उस वक्त ख्याल यह था कि गुरु जो भी करे और जो भी कहे वह श्रेष्ठ है, शुभ है। क्योंकि गुरु जानता है, हम नहीं जानते। इसलिये गुरु ने अगर दुत्कारा है तो यह भी एकलव्य के हित में है। यह मूल्य था, इसमें भी एकलव्य का अहित नहीं है। यह श्रद्धा थी। यह विश्वास था। गुरु जो कहे ठीक। गुरु के कहने पर संदेह नहीं हो सकता। एकलव्य का इसी में हित है कि गुरु ने इन्कार किया। इस गुरु की मूर्ति बनाकर एकलव्य ने शिक्षा लेनी शुरू कर दी। एक दिन द्रोण अर्जुन को लेकर उस जंगल से गुजरे हैं। और उन्होने तीर को गुजरते देखा अपने पास से। इतना सधा हुआ तीर कभी उन्होंने अपने जीवन में नहीं देखा था। वे चौंक गये। कौन चलाता होगा? देखा वही दरिद्र शूद्र, वही एकलव्य धनुर्विद्या में पारंगत हो गया है। द्रोण के मन में कठिनाई शुरू हुई। क्योंकि द्रोण ने अर्जुन को विश्वास दिलाया था कि तुझसे तेज धनुर्धर पैदा नहीं होगा। और उससे श्रेष्ठ धनुर्धर पैदा हो गया था। अमीर के बेटे को दिलाया गया विश्वास और एक गरीब का बेटा उसे पार किये ले रहा था। गुरु सदा से अमीरों के रहे हैं। जिस गुरु ने धनुषविद्या सिखाना इन्कार कर दिया था एकलव्य को वह उसके पास पहुंच गया और कहा कि तूने मेरी मूर्ति बनाकर सीखना शुरु किया है। तू मुझे

गुरु मानता है। उसने कहा : आप ही मेरे गुरु हैं। आपने ही मुझे सिखाया। 'तो मेरी दक्षिणा दे दो।' दक्षिणा लेते वक्त वह शूद्र न रहा जो शिक्षा देते वक्त था। शिक्षा देते वक्त जो शूद्र था, दक्षिणा लेते वक्त वह शूद्र न रहा। और जिसे शिक्षा नहीं दी जा सकती थी, उससे दीक्षा ली जा सकती थी, उससे दक्षिणा ली जा सकती थी। लेकिन गुरु असंदिग्ध था। उस पर संदेह का कोई कारण नहीं था। एकलव्य ने कोई सन्देह नहीं उठाया। उसने कहा : धन्य मेरे भाग्य ! आप दक्षिणा लेंगे तो मैं समझूंगा कि मैं स्वीकृत हो गया, मैं शिष्य हो गया। इसी की कामना और सपना मैं देख रहा था। और गुरु ने दक्षिणा माँग ली। उसका हाथ का अंगूठा कटवा लिया और शिष्य ने हाथ का अंगूठा काटकर दे दिया। और तीन हजार साल तक निरंतर गुरु अपनी किताबों में लिखते रहे कि एकलव्य जैसा शिष्य चाहिये। तीन हजार वर्ष के भारतीय साहित्य में एक भी व्यक्ति ने द्रोण की निन्दा नहीं की कि यह कैसा गुरु है ! क्योंकि यह सवाल ही नहीं था। गुरु पर संदेह ही नहीं किया जा सकता था। एकलव्य की प्रशंसा की, द्रोण की किसी ने निन्दा नहीं की। लेकिन अब मैं आपसे कहता हूं आगे ऐसी कोई किताब नहीं लिखी जा सकेगी, जिसमें एकलव्य की प्रशंसा हो और द्रोण की निन्दा न हो। आगे जो किताब लिखी जायेगी उसमें द्रोण की निन्दा होगी और एकलव्य की प्रशंसा मुश्किल होती चली जायेगी। कहा जायेगा कि एकलव्य भोला था, अंधा था, नासमझ था। और तथ्य भी यही बताते हैं कि एकलव्य भोला था और द्रोण चालाक था, कनिंग था। उसने गरीब के बेटे का अंगूठा काट लिया अमीर के बेटे की रक्षा के लिये। लेकिन अब कोई गुरु गरीब के बेटे का अंगूठा काटेगा अमीर की रक्षा के लिये तो बहुत मुश्किल है। अब ऐसी हालत में गुरु का अंगूठा काट लेंगे गरीब के बेटे।

भाषा बदल गई, जिन्दगी का रुख और रुझान बदल गया। पीछे लौटने की बात गलत है, अब पीछे नहीं लौटा जा सकता। आगे ही जाना पड़ेगा। द्रोण अब वापिस नहीं लौटाये जा सकेंगे। द्रोण को वापिस बिठाना असंभव है। और अगर द्रोण वापिस नहीं लौटाये जा सकते तो एकलव्य की प्रशंसा भी व्यर्थ हो गई। द्रोण को वापिस लौटाने में ही एकलव्य की प्रशंसा का कोई अर्थ है। एकलव्य भी व्यर्थ हो गये, द्रोण के साथ। अब नये तरह का द्रोण होगा और नये तरह का एकलव्य होगा। और जब तक हम नये तरह के द्रोण और नये तरह के एकलव्य को पैदा नहीं कर पायेंगे तब तक संघर्ष जारी रहेगा। संघर्ष नहीं रुक सकता। संघर्ष यह है कि अब पुराना द्रोण नहीं चलेगा, नया द्रोण चाहिये। पुराना एकलव्य भी नहीं चलेगा, नया एकलव्य चाहिये। पुरानी परंपरा कहेगी, पुरानी रूढ़ि कहेगी नहीं, पुराना ठीक था। हम तीन हजार साल तक बहुत सुख से जिये, लेकिन अब संदेह पैदा हो गया। अब हमें नया पैदा करना होगा। जब तक नया पैदा नहीं होगा और पुराना जिद् करता है कि हम बने रहें और पुराने अपनी जिद् में नये को पैदा होने में बाधा डालेगा, तब तक संघर्ष रहेगा, कान्फलिक्ट रहेगी। अगर संघर्ष को मिटाना है तो पुराने को जाने दो, नये के आने की व्यवस्था करो। पुराने के जाने को निश्चित रूप से स्वीकार किये बिना संघर्ष नहीं मिटता। और पुराने को जाने की स्वीकृति के बिना नये को आने की व्यवस्था भी नहीं जुटाई जा सकती। लेकिन चित्त पुराने को पकड़ता है, क्योंकि पुराना हजारों हजारों वर्ष का है। वह हमारे कलैक्टिव माइंड का हमारे अचेतन संस्कारों का हिस्सा हो गया है। मन को पीड़ा होती है कि द्रोण को कैसे अस्वीकार कर दें। लेकिन हो चुका। इतिहास ने द्रोण को अस्वीकार कर दिया, समय आगे बढ़ गया, बेटे जवान हो गये। पहली दफा नयी पीढ़ी जवान हुई है और इसीलिये जवानी के साथ जो नये रास्तों पर जाने का मोह आता है वह आया है, जवानी के साथ जो अहंकार, जो ईगो पैदा होती है, वह हुई है। जवानी के साथ जो व्यक्तित्व पैदा होता है, वह हुआ है। अस्वीकार करोगे तो संघर्ष पैदा होगा, स्वीकार करके अगर मार्गदर्शक बनो तो नई पीढ़ियों

"अगर संघर्ष को मिटाना है, तो पुराने को जाने दो। नये के आने की व्यवस्था करो।"

को भटकने से बचाया जा सकता है। लेकिन यह भटकने से बचाना अब विरोधी की हैसियत से नहीं हो सकता, अब यह मित्र की हैसियत से होगा। गुरु को मित्र बनना पड़ेगा तो गुरु और शिष्य के बीच का संघर्ष आज खत्म हो सकता है। लेकिन गुरु अगर पुराने गुरुडम को थोपे चला जाता है, तो यह संघर्ष बढ़ेगा और इस संघर्ष के बढ़ने में ये हालत पैदा हो सकती है कि कल वह मित्र भी न रह जाये। बाप को भी मित्र बनना पड़ेगा। आज बात यह है कि बेटा जब जवान होता है, तो बाप को मित्र बन ही जाना चाहिये। और समझदार बाप जवान बेटे के मित्र हो ही जाते हैं। लेकिन पीढ़ी पहली दफा जवान हुई है, और इसलिये पुरानी पीढ़ी को नई पीढ़ी के साथ मित्रता बनाने की कल्पना भी नहीं है, भावना भी नहीं है, धारणा भी नहीं है। इस नई पीढ़ी के साथ पुरानी पीढ़ी को मित्रता का रुख लेना ही पड़ेगा। गुरु के ऊपर से बैठकर पैट्रानाइजिंग नहीं चल सकती। नीचे उतरना ही पड़ेगा। नई पीढ़ी के साथ मित्रता का हाथ फैलाना पड़ेगा। और मेरी अपनी समझ है कि नई पीढ़ी मित्रता से इन्कार करने के लिये जरा भी तैयार नहीं हैं। नई पीढ़ी मित्रता चाहती है, लेकिन पुरानी पीढ़ी मित्रता के लिये राजी नहीं है। उसे मित्रता के लिये राजी होने में ह्यूमिलियेटिंग लगता है। लगता है कि हम कुछ नीचे उतर गये।

मेरे एक मित्र रूस गये। वे भारत की यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं वहाँ यूनिवर्सिटीज का अध्ययन करने गये थे। पहले ही दिन क्लास रूम में गये—देखने और देखते ही चौंक गये। एक लड़का दोनों जूते सामने की टेबिल पर टेके हुये आराम से लेक्चर सुन रहा है। दोनों जूते सामने टिकाये हुये बैठा है। सामने क्लास है। भारतीय बुद्धि को बहुत कष्टपूर्ण मालूम पड़ा कि यह क्या हो रहा है, यह कैसा इन्डिसप्लीन है। और गुरु पढ़ाये चला जा रहा है अपने बोर्ड पर तख्ते पर सवाल किये जा रहा है। यह बर्दाश्त के बाहर है, यह अपमानजनक है गुरू के लिये, कि लड़के इस तरह बैठे। जैसे ही कक्षा पूरी हुई मेरे मित्र ने जाकर उस शिक्षक को कहा, उस प्रोफेसर को पूछा कि यह क्या है पागलपन! एक लड़का जूते टिकाये बैठा हुआ है, जैसे किसी होटल में विश्राम कर रहा है। और आप पढ़ाये चले जा रहे हैं? उस शिक्षक ने कहा आपको पता नहीं, ये मुझे जानते हैं और ये मुझे इतना प्रेम करते हैं, ये इतने मैत्रीपूर्ण हैं मेरे प्रति कि मेरे साथ जैसे वे अपने घर में होते हैं, वैसे ही हो सकते हैं। वह लड़का मेरा अपमान नहीं कर रहा, उस लड़के ने मेरा सम्मान किया है। और उस लड़के ने यह सूचना दी है कि आपकी कक्षा मेरे घर जैसी है, जिसमें कि निश्चिन्त हो के बैठ सकें।

रूस में आप जानकर हैरान होंगे कि नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच कोई संघर्ष नहीं है। सिर्फ पृथ्वी पर एक मुल्क ऐसा है जहां पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच कोई संघर्ष नहीं है। क्यों? रूस ने एक सत्य समझ लिया है कि पुरानी पीढ़ी ने वक्त खो दिया है, उसका समय चला गया है और उसे नयी पीढ़ी के और उसके नये रुझान को समझ कर नये रास्ते बनाने जरूरी हो गये हैं। हम इसको कहेंगे कि ये अनुशासनहीनता है, और जैसे ही आपने कहा कि यह अनुशासनहीनता है आप अनुशासनहीनता का बीज बो रहे हैं। लेकिन यह दूसरा रुख है शिक्षक के देखने का और यह कहना कि यह अनुशासनहीनता नहीं है, बच्चे मेरे साथ एट ईज हो सकते हैं। तब बात बदल गई, संघर्ष खतम हो गया और बच्चों को भी एक दृष्टि मिली और जिस बिन्दु से संघर्ष शुरू होता है वह बिन्दु प्रेमपूर्ण हो गया। और उस बिन्दु ने सारी की सारी स्थिति बदल दी। इसलिये मैं कहता हूं कि संघर्ष पुरानी पीढ़ी पैदा कर रही है, नई पीढ़ी नहीं। और जब तक ये भ्रम जारी रहेगा कि नई पीढ़ी संघर्ष पैदा कर रही है, तब तक संघर्ष को नहीं मिटाया जा सकता। नई पीढ़ी जवान हो गई है, पुरानी पीढ़ी उसको स्वीकार करने को राजी नहीं है, ये जवानी कई तरह से आई है, दो तीन सूत्र आपसे कहना चाहता हूं।

पहली बात, आज तक दुनियाँ में बाप हमेशा बेटे से ज्यादा जानता था, आज से पहले तक। बाप हमेशा

बेटे से ज्यादा जानता था, क्यों ? क्योंकि काम बंधे हुये थे। एक कारपेन्टर है, बढ़ई है, उसने अस्सी साल तक कुर्सियाँ बनाई हैं, गाड़ियाँ बनाई हैं, उसका बेटा बीस साल का है, बेटा कुछ भी नहीं जानता। बाप अस्सी साल का स्किल्ड, कुशल कारीगर है। बाप की तरफ उसे देखना पड़ेगा। बाप जो कहेगा, उसे मानना पड़ेगा। हजारों साल तक दुनियाँ में काम सीमित था। नियमित था. बंधा हुआ था। बाप हमेशा बेटा से ज्यादा जानता था। पहली दफा स्थिति बदल गई है। बेटे बाप से ज्यादा जानते हैं। ये हमें ख्याल में नहीं है। क्योंकि बाप तीस साल पहले पढ़ा था, बेटे तीस साल बाद पढ़ रहे हैं। तीस साल में दुनियाँ का ज्ञान बहुत आगे बढ़ गया। तीस साल में बेटे जो पढ़कर लौट रहे हैं वह बाप बिल्कुल नहीं जानता। हालत बिल्कुल बदल गई। हमेशा आज तक बाप ज्यादा जानता था, बेटा कम जानता था। और ज्ञान ताकत है (knowledge is power)। यह आपको पता है न ? और सच है यह बात ज्ञान ताकत है। इसलिए ताकत बाप के हाथ में थी, क्योंकि ज्ञान बाप के पास था। लेकिन हालत अब बिल्कुल बदल गई—अब बेटे के पास ज्ञान है पिता के पास पिछड़ी हुई बातें हैं, ताकत बेटे के पास चली गई, बाप के पास नहीं है। लेकिन पुरानी आदत के कारण बाप कहता है—'मैं तुमसे ज्यादा जानता हूं', झगड़ा शुरू हो जायेगा। बाप ज्यादा नही जानता है, यह स्वीकार कर लेना जरूरी हो गया है। सच बात तो यह है कि आज युनिवर्सिटी में भी शिक्षक और मेधावी छात्र के बीच जानने में बहुत कम फासला है। और अगर जीनियस, थोड़ा मेधावी छात्र हो तो शिक्षक से ज्यादा जान सकता है। सिर्फ गधे लड़के शिक्षक से कम जानते हैं। जो प्रथम कोटि का विद्यार्थी है वह शिक्षक से ज्यादा जान सकता है, क्योंकि शिक्षक को पढ़े हुये बीस वर्ष हो गये। बीस वर्ष में सब कुछ बदल गया, बीस साल में सारी चीजें नई हो गईं, नये सिद्धाँत खोज लिए गये। नये अविष्कार किए गए, चीजों ने नये अर्थ ले लिए, इस बीस साल में जो बच्चा जानकर लौट रहा है। लेकिन अब तक ऐसा नहीं था। पुरानी पीढ़ी अब तक गुरूत्व के भाव से भरी थी। वह ठीक था अब तक, गलत नहीं था, गुरूत्व था उसके पास। लेकिन हालतें बदल गईं, पुरानी आदतें छूटने में वक्त लग रहा है। हालतें बदल गईं, बेटे ज्यादा जान रहे हैं। और बेटे ज्यादा जान रहे हैं, इस बात को स्वीकार अगर हम कर लें, तो वह जो ख्याल था पिता का कि हर हालत में, मैं ज्यादा जानता हूं, वह विनम्र हो जायेगा। नई पीढ़ी अब तक विनम्र थी, पुरानी पीढ़ी ईगोस्टि थी। पुरानी पीढ़ी अहंकारग्रस्त थी, क्योंकि ज्ञान उसके पास था, ताकत उसके पास थी, सब कुछ उसके पास था। अब नई पीढ़ी विनम्रता छोड़ रही है, तो घबड़ाहट होती है पुरानी पीढ़ी को। क्योंकि जिन कारणों से आपका अहंकार मजबूत था, वही कारण नई पीढ़ी के पास आ गये हैं। नई पीढ़ी का अहंकार जाग रहा है, पुरानी पीढ़ी को अहंकार छोड़ना पड़ेगा, नहीं तो संघर्ष जारी रहेगा। और संघर्ष के माध्यम से अगर पुरानी पीढ़ी को विनम्र होना पड़ा तो वह पराजय होगी, और दुख का कारण होगा। लेकिन अगर पुरानी पीढ़ी समझपूर्वक विनम्र हो सकी तो वह जोत होगी पुरानी पीढ़ी की और पुरानी पीढ़ी फिर आदर और गौरव बना सकेगी। लेकिन यह हमारी समझ में एकदम से नहीं आता। हिन्दुस्तान में अगर हम पीछे लौटकर देखें तो सारा काम सुनिश्चित था। जो बाप करता था, वही बेटा करता था, वही उसका बेटा करता था, हजारों साल तक यही होता था। लेकिन, अब ऐसा नहीं हो रहा है। एक बाप जो भंगी है, उसका बेटा राष्ट्रपति तक हो सकता है। एक बाप है जो गांव में लकड़ी का सामान बनाता है, बेटा डाक्टर हो सकता है।

यह बेटा नई दिशाओं में जाकर जान रहा है। ज्ञान के नये द्वार खुल गये हैं। आज तो मैं सुनता हूं कि पश्चिम में विज्ञान पर कोई बड़ी किताब लिखना मुश्किल हो गया है। क्योंकि बड़ी किताब लिखना हो तो कम से कम दो साल चाहिए। और दो साल में आपने जो लिखा वह आऊट आफ डेट हो जाता है। क्योंकि दो साल में नई खोज हो जाती है। तीन हजार साल में जो खोज हुई थी, उतनी तीन सौ साल में हुई। तीन सौ वर्ष में

जितनी खोज हुई थी, उतनी आज तीन वर्ष में हो जाती है आज इतनी रिसर्च चलती है दुनिया में कि सारे रिसर्च पेपर प्रकाशित नहीं हो पाते। आज इतनी रिसर्च चलती है कि सारी पी–एच० डी० थीसिस प्रकाशित नहीं हो पाती। आज इतना ज्ञान है दुनिया में हमें पता ही नहीं चल पाता। आज प्रति सप्ताह दुनिया में पाँच हजार ग्रंथ छप जाते हैं। दुनिया दीवाने की तरह ज्ञान का ढेर लगाती जाती है। नये बेटे इस ज्ञान को पाने में समर्थ होंगे, पुराने लोग पिछड़ जायेंगे। स्वाभाविक है, पुराने लोगों को यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि ज्ञान का जो वजन था—वह नई पीढ़ी के पास चला गया। पुराना समाज टूट गया। पुरानी धारा टूट गई, सब नया हो गया। इस सब नये में, नया ताकतवर हो गया है।

अब तक इसे हम ऊंचा मानते थे कि कोई सिद्ध करदे कि हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी है। वेद मानने वाला कहेगा कि हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी है। जैन कहेगा कि हमारे तीर्थंकर का वचन सबसे ज्यादा पुराना है। सारी दुनिया के लोग कहेंगे कि हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी है, क्यों ? क्योंकि पुराने में एक मूल्य था, जो जितनी ज्यादा पुरानी है, वह उतना ही ज्यादा महत्वपूर्ण है। लेकिन अब हालत बदल गई, अब आदमी यह सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है कि जो जितना ज्यादा नया है, वह उतना ही महत्वपूर्ण हैं। यह सिद्ध करने की कोशिश है कि जो कहा जा रहा है, वह पहली दफा कहा जा रहा है। अब जितनी नई है बात, उतनी कीमत की है। जितनी पुरानी है, व्यर्थ हो गई। क्योंकि जितनी पुरानी है, बात उतनी पिछड़ गई। जितनी नई है उतनी विकसित हो गई। सारा पांसा पलट गया, सारा पाँसा नई पीढ़ी के पक्ष में चला गया। अगर पुरानी पीढ़ी के पक्ष में पाँसा हो तो समाज स्टेटिक होगा, रुका हुआ होगा। अगर नई पीढ़ी के पक्ष में पाँसा हो तो समाज डायनामिक होगा, गतिशील होगा। भारत का समाज अभी भी स्थिर है, स्टेटिक है और इसीलिए भारत विकास नहीं कर रहा है। पश्चिम के समाज में करीब-करीब वह क्रांति घटित हो चुकी है, जो हमारे समाज में शुरू हुई है। और उस क्रांति ने पश्चिम के समाज को एक गत्यात्मकता एक डायनिज्म दे दिया। एक गति दे दी और उसका परिणाम यह हुआ कि अगर आज रूस और अमरीका के बच्चों से जाकर पूछो कि क्या सपने देख रहे हो ? क्या विचार कर रहे हो ? वे सोच रहे हैं चाँद-तारों पर बस्तियाँ बसाने को। और हमारे बच्चे ? जाकर देखो गाँव में—अभी भी बैठे हैं धूल में और रामलीला देख रहे हैं।

हमारा चित्त अतीत से बंधा हुआ है, तो गति कैसे होगी। गति होती है भविष्य की तरफ बहाव से। नहीं पीढ़ी जीतेगी क्योंकि नई पीढ़ी का जीतना विकास के पक्ष में है पुरानी पीढ़ी हारना चाहिये क्योंकि पुरानी पीढ़ी का जीतना विकास के विरोध में है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है आज आप नई पीढ़ी हैं कल आप पुरानी पीढ़ी हो जायेंगे। कल आप बाप बन जायेंगे, पुरानी पीढ़ी हो जायेंगे, फिर आपके बेटों का जीतना जरूरी है। आप भी वही बाधा शुरू करोगे डालना कि रुको, गलत हो रहा है। हम जो कहते हैं वही ठीक है। अब भूल जाओ यह बात, दुनियां में अब बाप को आगे यह कहने का अधिकार नहीं होगा कि हम जो कहते हैं, वही ठीक है। अब यह हक आगे नहीं रहने वाला है। अब हर पीढ़ी को नई पीढ़ी को गति देने को झुक जाना पड़ेगा। और जो पीढ़ी जितने जल्दी झुकने के लिये विनम्र होगी, वह पीढ़ी उतने ही जल्दी आदरित हो जायेगी। इसलिए मेरा कहना है कि पुरानी पीढ़ी आदर चाहती है, तो आज रुकावट डालने से आदर नहीं मिलेगा, रुकावट डालने से अपमान मिलेगा आज झुक जाने से आदर मिलेगा। और अगर पुरानी पीढ़ी झुकने को राजी हो तो संघर्ष आज इसी क्षण खत्म है। लेकिन वह झुकने को राजी नहीं है क्योंकि उसे लगता है कि पावर और प्रिस्टिज की जितनी स्थितियाँ हैं, सब उसके हाथ में हैं। लेकिन उसे पता नहीं है कि जीवन की धारा न शक्ति को मानती न पदों को मानती। जीवन की धारा सब पत्थरों को बहा ले जाती है और जो पत्थर बाधा डालते हैं, वे आज नहीं कल टूटके रेत हो जाते हैं। लेकिन

इसे समझने में देर लगती है, पुरानी आदतें छोड़ने में बहुत मुश्किल होती है। अभी तक हमारी आदतें नहीं छूटीं वे जो हमने जानवर से सीखी थीं।

अभी भी हम रास्ते पर चलते हैं तो दोनों हाथ जोर से हिलते हैं। अब हाथों का चलने में कोई भी हाथ नहीं हैं। हाथ क्यों हिलते हैं ? पुरानी आदत। कोई दस लाख साल पहले हमारे बाप-दादे चारों हाथ पैर से चलते थे। दाँयें पैर के साथ बायाँ हाथ चल रहा है, बायें पैर के साथ दायां हाथ चल रहा है। वही आदत। अब हाथ के चलने से चलने में कोई सहायता नहीं है। आप हाथ रोककर तेजी से चल सकते हैं लेकिन हाथ हिलते हैं, पुरानी आदत जारी है। बेमानी है यह बात हाथ के हिलने में कोई मतलब नहीं है, किसी तरह का लेकिन डार्विन जो कहता है ठीक कहता है कि हाथ का हिलना यह बताता है कि कि कभी चार हाथ पैर से चलता रहा आदमी। दस लाख साल का लम्बा फासला—पुरानी आदत नहीं गई। बेमानी हो गई बात लेकिन अटकी है। मेकेनिकल हो जाती हैं, आदतें यंत्रीकृत हो जाती हैं। हाथ तक की आदतें यन्त्रीकृत हो जाती हैं। तो मन की कैसे नहीं हो जायेंगी। बाप यह कैसे सोच सकता है कि बेटे के प्रति विनम्र हों। गुरु कैसे सोच सकता है शिष्य के प्रति मैत्री ! नहीं यह कैसे हो सकता है ! यह हमारी हजारों साल की आदत है, जिससे संघर्ष पैदा होता है। पुराने उत्तरों को पकड़े रहने से, नई की खोज नहीं हो पाती। नई दिशा रूक जाती है और जीवन माँगता है नई खोजें। जीवन कहता है : रोढ़े स्वीकार नहीं करेंगे। तोड़ेगें पत्थर और बहेंगे, सागर की तरफ। फिर मुश्किल होती है। पत्थर अपनी जिद में होता है कि मैं पत्थर तुम पानी। मैं ताकतवर हूं, तुम पानी हो। मेरे ही बेटे हो, मेरे ही खून हो, तुम क्या कर सकते हो ? लेकिन पत्थर को पता नहीं कि १०० साल बाद पानी ही होगा पत्थर नहीं। पानी कमजोर दिखता है शुरू में, लेकिन सतत् चोट पड़ती रहती है, पड़ती रहती हैं और फिर आज पानी, पानी ही नहीं रह गया है। एक नई खोज सामने आ गई है। एक नया तथ्य सामने आ गया है कि अब तक दुनिया में वृद्धों के समाज थे, संगठन थे, समितियाँ थीं, गोष्ठियाँ थीं, पंचायतें थीं, पहली दफा युवकों का समाज पैदा हो रहा है। पहले नहीं था। युवक पहली दफा दुनियाँ में इकट्ठे हो रहे हैं—यूनिव्हर्सिटीज में कालेजों में। पहले युवकों की कोई संगठित जगह नहीं थी जहाँ वे इकट्ठे खड़े हो गये हों। एक-एक बेटा था, और बाप सब इकट्ठे थे, यह पता होना चाहिये। गांव की पंचायत में बाप सब इकट्ठे थे और बेटे फुटकर थे। इकट्ठे बाप से फुटकर बेटे नहीं जीत सकते थे। लेकिन हालत बदल गई। बेटे सब इकट्ठे हैं और बाप फुटकर पड़ गर हैं। बाप नहीं जीत सकते—अब बेटों से।

सारी दुनियाँ में शिक्षा ने एक अद्‌भुत काम कर दिया जिसका कि बापों को कभी पता नहीं था, नहीं तो कभी शिक्षा भी न देते। युवकों को एक–एक जगह इकट्ठा कर दिया। युवकों का वर्ग पैदा कर दिया। जनरेशन पैदा कर दी। युवक तो होते थे हमेशा से लेकिन पीढ़ी नहीं होती थी। पीढ़ी हमेशा पुरानों की होती थी। पीढ़ी नये लोगों की पहली दफा पैदा हो गई। एक-एक युनिव्हर्सिटी में बीस-बीस हजार युवक इकट्ठे हैं। एक-एक नगर में लाखों युवक इकट्ठे हैं। अब एक लाख गुरुओं को कहाँ इकट्ठा करियेगा। उनकी ताकत कमजोर पड़ गई। यह एक लाख युवकों की इकट्ठा शक्ति अब कुछ भी करवा लेगी। इसलिए वृद्ध जनों का समाज थोड़ी भी समझपूर्वक व्यवहार करे तो उसे यह तथ्य समझ लेना चाहिये कि युवक इकट्ठे हो गए हैं और युवक रोज इकट्ठे होते जा रहे हैं। जितनी अनिवार्य शिक्षा होगी, उतने युवक इकट्ठे होते चले जायेंगे। और वे सारी दुनियाँ से पुराने को तोड़ डालें, इससे पहिले कि वे तोड़ें, पुराने को छोड़ देना चाहिए, तो पुराने का आदर बाकी रहेगा। इस वक्त वृद्ध को समझदार होने की जरूरत है। अगर वृद्ध ने नासमझी की तो सदा के लिए खतरा हो सकता है। और संघर्ष इस तरह विकृत हो सकता है कि अराजक हो जाए।

एक छोटी सी कहानी मैंने सुनी है, आपने भी सुनी होगी। सुना है कि एक राजमहल के चूहों ने इकट्ठे होकर मीटिंग की, कि राजा की बिल्ली बहुत परेशान

किये हुये है। बहुत विचार करके एक चूहा ने सुझाव दिया कि बिल्ली के गले में घण्टी बाँधें। लेकिन सब चूहे हंसे कि पागल हो ? यह तो पहले भी कई बार बात हो चुकी है चूहों की सभा में। बाप दादों से चली आती है यह रीति। हमेशा हम चूहे इकट्ठे होते रहे हैं और जब आखिर में मामला यह आता है कि बिल्ली के गले में घण्टी बाँधें, लेकिन बाँधें कौन ? फिर मामला वहीं रुक जाता है। फिर रुक गया मामला, ऐसा कई बार होता रहा।

एक बार फिर बीसवीं सदी के मध्य में, फिर एक महल के चूहे इकट्ठे हुए। उन्होंने कहा कि बड़ी मुश्किल है कि बिल्ली हमला कर रही है, लेकिन हम क्या कर सकते हैं ? वही एक नुस्खा है, बिल्ली के गले में घंटी बांधो और घंटी बाँधी नहीं जा सकती, इसलिए मामला खतम। हम तो सदा से सुनते आये हैं कि नुस्खा एक है कि बिल्ली के गले में घण्टी बाँधो, काम पूरा हो जाये। बिल्ली निकले, आवाज का पता चल जाये, चूहे सब सजग हो जायें। लेकिन घण्टी बाँधे कौन ? तीन जवान चूहों ने कहा : पागल हुये हो, घण्टी बांधना तो बिल्कुल आसान है। बूढ़ों ने कहा : हम पागल हैं कि तुम ? अभी उम्र कम है अनुभव नहीं है, बिल्ली के पास जाओगे बेटे तो वापिस नहीं लौटोगे अभी बिल्ली को तुम जानते नहीं हो, हम कई बार निकट जाकर लौटे हैं, तो जानते हैं कि बिल्ली क्या है। तुम्हें अभी बिल्ली का पता नहीं है। और तुम जैसे नासमझ बेटे कई बार कह चुके हैं कि घण्टी बाँधेंगे। और घण्टी बाँधने का मतलब यह है कि पास गये और बिल्ली खा गई। हमारे वेद में लिखा हुआ है, हमारे शास्त्र में लिखा हुआ है कि घण्टी बांधी नहीं जा सकती।

और सभी शास्त्रों में इसी तरह की बातें लिखी हैं। जो करने को बताते हैं वह किया नहीं जा सकता है। सब शास्त्रों में इसी तरह की बातें लिखी हैं कि जो वे कहते हैं वही नुस्खा है करो और वह हो नहीं सकता। वे कहते हैं ब्रह्मचर्य साधो और सब ठीक हो जायेगा। ब्रह्मचर्य सधता नहीं है। और सब मामला गड़बड़ हो जाता है। वे कहते हैं—अपरिग्रह साधो, सब ठीक हो जायेगा। वे कहते हैं अहिंसक हो जाओ, दुनियाँ में युद्ध नहीं होंगे और अहिंसा आती नहीं। सब शास्त्रों में इसी तरह की बातें लिखी हैं कि बिल्ली के गले में घण्टी बाँधो और घण्टी बंधती नहीं मामला वहीं खतम हो जाता है। शास्त्र वहीं बेकार हो जाते हैं।

लेकिन उन तीन चूहों ने कहा : छोड़िये भी क्या बकवास कर रहे हैं ? घण्टी कल सुबह हम बाँध देंगे, उसके बाद बातचीत होगी। बूढ़ों ने कहा : पागलो, जीवन खो दोगे। लेकिन उन्होंने कहा अब कल सुबह ही बातचीत होगी। और आपको पता है दूसरे दिन सुबह उन्होंने देखा बिल्ली के गले में घण्टी बंधी है। बूढ़े चूहे बड़े हैरान हुये कि जो शास्त्रों में लिखा है कि कभी नहीं हो सकता, वह हो कैसे गया ? उन तीन चूहों ने घण्टी बांध दी शायद आप तक यह खबर भी न पहुंची होगी, क्योंकि अखबार वाले काम को खबरें छापते ही नहीं। वे सब अखबार भी बूढ़े मस्तिष्कों के हाथ में होते हैं। असल में उन तीन जवान चूहों का आवागमन एक केमिस्ट की दुकान में था। दवाई वाले की दूकान में था। वे नींद की दवा की गोली ले आये थे। और जिस घर में बिल्ली दूध पीने के लिए घुसना चाहती थी, वहाँ छिपकर बैठ गए। और जब बिल्ली दूध पीने के लिए आई तो उसमें नींद की दवा डाल दी। बिल्ली बेहोश हो गई, चूहों ने घण्टी बाँध दी। लेकिन बूढ़े चूहे सिर पीटने लगे कि यह तो कभी हुआ ही नहीं, यह हुआ कैसे ? कुछ भ्रम पैदा हो रहा है। नये चूहों ने छोटी सी तरकीब निकाल ली जो बूढ़े चूहों को पता नहीं भी हो सकती थी। क्योंकि नींद की दवा ही नई चीज है। लेकिन जब तक हम पुराने फार्मूले को पकड़कर चिल्लाते रहते हैं, तब तक नए फार्मूले के सोचने की क्षमता भी नहीं खुलती, द्वार भी नहीं खुलता।

मेरा कहना है अभी पूरे हिंदुस्तान में और सारी दुनिया में पुरानी पीढ़ी यह चिल्ला रही है कि नई पीढ़ी संघर्ष पैदा कर रही है, यह सरासर असत्य है। नई पीढ़ी संघर्ष पैदा नहीं कर रही है। संघर्ष पुरानी पीढ़ी अपनी जिद से पैदा कर रही है। और पुरानी पीढ़ी जिद की

जिस आदत में बंधी है उसे वह छोड़ने को राजी नहीं है। इसलिए संघर्ष पैदा हो रहा है। यह संघर्ष आज मिट सकता है, अभी और यहीं, लेकिन पुरानी पीढ़ी को तैयार होना पड़ेगा और मेरा मानना है कि पुरानी पीढ़ी तैयार हो जाये, समझपूर्वक साथी हो जाये, तो नई पीढ़ी के भटकने की जो संभावना है वह भी खत्म हो जा सकती है। नई पीढ़ी के गल्ती हो जाने के जो भय हैं, वे भी समाप्त हो जा सकते हैं। नई पीढ़ी जो अराजकता पैदा कर सकती है, मूल्य हीनता पैदा कर सकती है, समाज की सारी जिन्दगी को अस्तव्यस्त कर सकती है, वे खतरे भी खत्म हो जा सकते हैं। संघर्ष अगर जारी रहा तो वे खतरे पैदा होंगे और मजे की बात यह है कि पुरानी पीढ़ी कह रही है कि हम वे खतरे पैदा नहीं करना चाहते हैं, इसलिये हम नई पीढ़ी को रोकने की कोशिश करते हैं। मैं कहना चाहता हूं, तुम रोकते हो, तो खतरे पैदा होते हैं। तुम रोको मत, जाने दो। जीवन जिस तरफ जा रहा है। जाने दो, तुम मित्र बनो, साथी बनो, समझपूर्वक साथ चलो, साया बनो, सहारा बनो तो शायद नये बेटों को भटकने से रोका जा सकता है—संघर्ष से भी और जो क्रांति अनिवार्य हो गई है, वह प्रेम पूर्ण, मैत्रीपूर्ण और अहिंसात्मक ढंग से पूरी हो सकती है। क्रांति तो पूरी होगी। अगर सम्यक ढंग से पूरी नहीं होगी तो गलत ढंग से पूरी होगी। पानी भाप बनेगा, वह १०० डिगरी पर आकर उबल गया है। अगर जबरदस्ती की और केतली में बन्द करने की कोशिश की तो विस्फोट होगा और घर में कई लोग मरेंगे। पुरानी पीढ़ी को अत्यन्त समझ की जरूरत है। हमेशा पुरानी पीढ़ी ने कहा कि नई पीढ़ी कोसमझना चाहिये लेकिन अब बात बदल गई, अब पुरानी पीढ़ी को समझना चाहिये। पुरानी पीढ़ी समझती है तो एक बहुत नये मनुष्य का जन्म हो सकता है। क्योंकि जब सारे मूल्य बदलते हैं, सारे ढांचे टूटते हैं सारी व्यवस्था बदलती है तो एक सौभाग्य का क्षण आता है, उस क्षण में हम नए समाज को जन्म दे सकते हैं। लेकिन अगर पुरानी पीढ़ी ने जिद्द की तो वह जिद्द का परिणाम नई पीढ़ी पर प्रतिक्रिया होगी—रिएक्शन होगा। और प्रतिक्रिया में चीजें नष्ट होती हैं, बदलती नहीं। अगर मुल्क को एक क्रांति देखनी है तो प्रतिक्रिया पैदा नहीं होने देना चाहिये। यदि क्रांति देखनी है और मेरा मानना है कि सब क्रांतियाँ बड़ी सहजता से हो सकती हैं, अगर रोका न जाए। और जबरदस्ती रोकने की कोशिश की जाये तो क्रांतियाँ हिंसात्मक हो जाती हैं। और हिंसा बहुत खतरनाक है। हिंसा जिन चीजों को तोड़ती है उन्हें तो तोड़ ही देती है, जिनके बनाना है उनको बना नहीं पाती। इसलिए पुरानी पीढ़ी अगर एक समझ का, सूझबूझ का सबूत दे, तो नई पीढ़ी के पास इतनी ताकत है, जितनी कभी नहीं थी और इस ताकत का सृजनात्मक उपयोग हो सकता है। गुरु को समझना है, बाप को समझना है, बुद्ध को समझना है। और ये समझ पैदा होती है तो संघर्ष पार हो जायेगा और एक नये समाज का जन्म हो सकता है।

(समाप्त)

★

संकलन : **श्री नारायण श्रीवास्तव**

जबलपुर

स्वाधीनता दिवस के अवसर पर हम "युक्रांद" के आगामी अंक में राष्ट्रीय महत्व की समस्याओं पर आचार्य श्री के विचार प्रस्तुत करेंगे। इस संग्रहणीय अंक की प्रतियां अपने विक्रय एजेण्ट से अग्रिम सुरक्षित करा लें।

स्फुट विचार....

(चर्चाओं से संकलित)

★ मैं तथाकथित शिक्षा से कितना पीड़ित हुआ हूं, कैसे बताऊँ ? । सिखाया हुआ ज्ञान, विचार की शक्ति को तो नष्ट ही कर देता है विचारों की भीड़ में विचार की शक्ति तो दब ही जाती है । स्मृति प्रशिक्षित हो जाती है और ज्ञान के स्रोत अपरिचित ही रह जाते हैं । फिर यह प्रशिक्षित स्मृति ही ज्ञान का भ्रम देने लगती है । इस तथाकथित शिक्षा में शिक्षित व्यक्ति को नये सिरे से ही विचार करना सीखना होता है । उसे फिर से अशिक्षित होना पड़ता है । यही मुझे भी करना पड़ा और यह कार्य अतिकठिन था । वस्त्र उतारकर रखने जैसा नहीं, वरन् स्वयं की चमड़ी उतारकर रखने जैसी कठिनाई थी । पर यह जरूरी था । उसके बिना कोई राह ही नहीं थी । अपने ही ढंग से जीवन को देखने के लिये आवश्यक था कि जो मैं सीखा हूं उसे भूल जाऊं । अपनी ही दृष्टि पाने के लिये दूसरों की दृष्टियाँ विस्मृत करनी आवश्यक थीं । स्वयं के विचार को पाने के लिये औरों के विचार से मुक्त होना जरूरी है । जिसे अपने पैरों से चलना सीखना हो, उसे दूसरों के कंधे का सहारा छोड़ ही देना चाहिये । स्वयं की आँखें तभी खुलती हैं जब हम दूसरों की आँखों से देखना बंद कर देते हैं । और स्मरण रहे कि दूसरों की आँखों से देखने वाला व्यक्ति अंधे व्यक्ति से भी ज्यादा अंधा होता है ।

★ जीवन में जो भी गति है, जो भी विकास है, जो भी ऊंचाइयों का स्पर्श है वह सब दुस्साहस से आता है दुस्साहस का अर्थ है असुरक्षा को आमंत्रण, अपरिचित और अज्ञात से प्रेम, जोखिम का आनन्द । खतरे उठाने की और खतरों से प्रेम करने की जिसकी तैयारी नहीं है, वह जीता है लेकिन जीवन को नहीं पाता है और सबसे बड़ा दुस्साहस क्या है ? परमात्मा की खोज सबसे बड़ा दुस्साहस है । क्योंकि, परमात्मा की दिशा से अधिक असुरक्षित और कौन सी दिशा है ? क्योंकि, परमात्मा से अधिक अपरिचित, अज्ञात और अज्ञेय क्या है ? क्योंकि, परमात्मा की खोज से बड़ा दाँव, जुआँ और जोखिम कौन-सी है ? इससे मैं कहता हूं कि दुस्साहस सबसे बड़ा धार्मिक गुण है । जिसमें दुस्साहस नहीं है, वह धर्म के लिये नहीं है, धर्म उसके लिये नहीं है ।

(संकलन : सौ० नीरु)

विश्व सेवा का मार्ग : आत्म साधना

व्यक्ति ठीक ठीक अर्थों में यदि यह जान जाय कि उसका स्वार्थ क्या है, उसका आत्मवित्त क्या है, उसका स्वयं का कल्याण क्या है और उसे साधने में अगर वह समर्थ हो जाय सफल हो जाय तो फिर वैसा व्यक्ति अनिवार्यरूपेण दूसरे का अहित करने में असमर्थ हो जाता है। न केवल अहित करने में असमर्थ हो जाता है बल्कि दूसरे का हित भी, दूसरे का कल्याण भी उसे स्पष्ट हो जाता है और वह उसमें प्रवृत हो जाता है।

जीवन में कुछ आश्चर्यजनक सूत्र और नियम हैं। उनमें से एक यह है कि अगर आप लोगों को घृणा करने में असमर्थ हो जायें तो आप अनिवार्यरूपेण उनको प्रेम करने में समर्थ और मजबूर हो जायेंगे। अगर आप लोगों का अहित करने में असमर्थ हो जायें, आपका विवेक, आपकी प्रेरणा किसी को दुख पहुंचाने में असमर्थ हो जाय तो आप अनिवार्यरूपेण उन्हें सुख, उनके जीवन में कल्याण और मंगल देने में समर्थ हो जायेंगे। यह वैसा ही सत्य है जैसा हम कहें कि इस कक्ष में अगर अन्धेरा न रह जाय तो आप पूछेंगे, कि अन्धेरा न रह जाय यह तो ठीक है, लेकिन प्रकाश ? तो हम कहेंगे कि अन्धेरा न रह जाने का दूसरा पहलू ही प्रकाश का होना है। दूसरे के प्रति अगर आपकी अहित–दृष्टि विलीन हो जाय, दूसरे के प्रति यदि घृणा हिंसा और क्रोध विलीन हो जाय तो उसी सत्य का दूसरा अनिवार्य पहलू यह है कि आपके हृदय में दूसरे के प्रति क्षमा, उनके कल्याण की भावना सहज स्फूर्ति होगी। यह स्मरण रखिये कि जब तक श्वांस है तब तक जीवन के साथ कर्म बंधा हुआ है तब तक कर्म होगा।

महावीर को केवल-ज्ञान उपलब्ध हुआ। उसके चालीस वर्ष बाद उनका देहपात हुआ। चालीस वर्ष तक महावीर क्या करते थे ? क्या आप सोचते हैं बैठे थे कभी। बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध होने के कोई ३५ वर्ष बाद देह छूटी तो क्या आप सोचते हैं कि वह ३५ वर्ष निष्क्रिय बैठे रहे ? ज्ञान उपलब्ध हुआ, दूसरे के प्रति बुरा करना असम्भव हो गया तो फिर शेष यह चालीस और पैंतीस वर्ष कहाँ व्यतीत हुए ? यह लोगों की सेवा में और लोगों को प्रेम बाँटने में व्यतीत हुए। एक तो वासनाजन्य कर्म होता है जो हम कुछ पाने के लिए करते हैं और एक करुणाजन्य कर्म होता है जो हम पाने के लिए नहीं करते। जो वासना की शक्ति है मनुष्य के भीतर, वही ज्ञान उत्पन्न होने पर करुणा की शक्ति में परिणत हो जाती है। अभी आप वासना से उत्प्रेरित हैं और जो कुछ कर रहे हैं अपने लिए कर रहे हैं। तब भी मनुष्य करता है लेकिन जो भी करता है कुछ देने के लिए करता है। पाने के लिए और देने के लिए करने में इतना फर्क पड़ जाता है। और फिर पाने के लिए जो कर्म किया जाता है उस कर्म को करना दुःखद होता है। क्यों ? हमारी नजर तो फल में लगी रहती है, कर्म तो हम मजबूरी में करते हैं। हमें अगर बिना कर्म किये फल मिल जाय तो तत्क्षण राजी हो जायेंगे कि हमें तो फल ही चाहिए था कर्म से क्या प्रयोजन था। जिन लोगों के भी कर्म वासना–प्रेरित हैं उन्हें कर्म करने में कष्ट और दुःख का अनुभव होता है क्योंकि उनकी आशा तो केवल फल में लगी रहती है।

जिन लोगों का कर्म करुणाजन्य होता है उन्हें फल का तो कोई प्रश्न ही नहीं होता। उन्हें कर्म ही आनन्द हो जाता है। वे जो करते हैं वही उनका आनन्द है। वे जो कर रहे हैं वही उनका आनन्द है। उनके पास कोई फलाकांक्षा नहीं है। करुणा प्रेरित कर्म अनिवार्यतया अनासक्त, एवं अनिवार्यतया फलाशक्ति शून्य होता है।

एक छोटी सी कहानी कहूं। उससे शायद मेरी बात समझ में आ जाय और यह ख्याल में आ जाय कि ऐसा भी कर्म है जो केवल आनन्द से ही फलित होता है और जिसके पीछे कोई और माँग नहीं होती। बहुत लोगों को मैं यह कहानी कहा हूं और मुझे लगता रहा है कि वह कहानी कुछ सूचना देती है। और जो बात मैं नहीं समझा पाता हूं उस कहानी से वह दिखाई पड़ जाती है।

एक रात अकबर अपने संगीतज्ञ तानसेन को बिदा दे रहा था। देर तक रात उसने उसको सुना था, उसके वाद्य को सुना था और सीढ़ियों पर उसे विदा करने आया था। विदा करते हुए अकबर ने कुछ बातें कहीं और उसने एक बात यह कही कि मैं जब भी तुम्हें सुनता हूं तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमसे श्रेष्ठ न तो कोई बजा सकता है, न किसी ने बजाया होगा। और मैं यह भी कल्पना नहीं कर पाता कि तुमसे श्रेष्ठ और तुमसे ज्यादा कुशल कोई व्यक्ति बाद्यों को बजाने में हो सकेगा। मैं कल्पना ही नहीं कर पाता। लेकिन कल रात अचानक सोते समय ख्याल पाया कि आखिर तुमने भी किसी से तो सीखा ही होगा, जरूर कोई गुरु होगा। हो सकता है तुम अपने गुरु को पार न कर पाये हो? हो सकता है तुम्हारा गुरु तुमसे ज्यादा कुशल और योग्य हो तो अगर तुम्हारा गुरु जीवित है तो मैं उसे सुनना चाहूंगा। तानसेन ने कहा कि गुरू तो मेरा जीवित है लेकिन सुनना कठिन है। तानसेन ने कहा— गुरु मेरा जीवित है लेकिन सुनना कठिन है। क्योंकि मैं इच्छा से बजाता हूं और मेरा गुरु आनन्द से। मुझे कुछ चाहिए इसलिए बजाता हूं। मेरा गुरु आनन्द से बजाता है। इसीलिए जिसकी इच्छा हो, जब वह बजाता है तभी सुनना पड़ता है। और कोई रास्ता नहीं है। फिर भी मैं देखूंगा वह कब इन दिनों बजाते हैं। आपको सुनना है तो वहीं चलकर और चोरी से सुनना पड़ेगा। क्योंकि अक्सर लोग सामने पहुंच जायें तो गुरु बजाना बन्द कर देते हैं।

एक समय आधी रात में चोरी से उसके गुरु के झोपड़े के पास अकबर ने और तानसेन ने छिपकर उसके गुरु का वाद्य सुना। अकबर ने कहा है कि एक घंटे तक मेरी आंखों से आँसू बन्द नहीं हुए और जब हम वहां से वापस हुए तो राजमहल तक पहुंचने तक तानसेन से कुछ भी बोलने की स्थिति में न आ सका। राजमहल के भीतर जाते समय मैंने तानसेन से इतना ही कहा 'मैं सोचता था कि तुम्हारा कोई भी मुकाबला नहीं कर सकता। अब मैं सोचता हूं कि तुम्हारे गुरु से तुम्हारा मुकाबला ही क्या और यह भी पूछना चाहता हूं कि इतना फर्क क्यों है?' तानसेन ने कहा मैं इसलिए बजाता हूं कि बजाने के बाद जो मुझे मिलेगा वह मेरा आनंद है और मेरे गुरु इसलिए बजाते हैं कि बजाने के पहले उन्हें आनन्द मिल चुका है और उस आनंद को बाँटने के लिए वह बजाते हैं। आनन्द भीतर उपलब्ध हो तो वह बटना चाहता है। स्मरण रखें आनन्द का स्वभाव विस्तीर्ण होना है, फैलना है और दुखका स्वभाव सिकुड़ना है।

जब कोई आदमी दुख में होता है तो वह सिकुड़ना चाहता है—एकान्त में, अकेले में, किसी कोने में कोई न बोले, कोई न दिखाई पड़े। दुखी आदमी अकेले में सिकुड़ना चाहता है दूसरों से भागना चाहता है। दुख की आत्यांतिक घड़ी में आदमी आत्मघात कर लेता है। किसलिए? ताकि एकदम अकेला हो जाय। आत्मघात का और कोई मतलब नहीं है। जियेगा तो कोई न कोई साथ होगा. कोई न कोई मिलेगा। आत्मघात सबसे सम्बन्ध तोड़ देगा। दुख की आत्यंतिक घड़ी में आत्महत्या (Sucide) इसीलिए आदमी कर लेता है कि दुख सिकोड़ता है और लोगों से तोड़ता है। आनन्द बिल्कुल विपरीत है। आनन्द फैलता है और जोड़ता है।

महावीर को जब आनन्द मिला तो जंगल छोड़कर बस्ती में आए। जब तक आनन्द नहीं मिला था और दुःख में थे, तो जंगल में थे लेकिन जब आनन्द मिला तो जंगल में एक दिन भी नहीं थे। फिर तो बस्ती में थे। लोगों के बीच में थे। यह ख्याल कीजिए कि क्राइस्ट या बुद्ध या महावीर या मुहम्मद ये सारे लोग जब दुःख में थे तो जंगल में रहे, एकान्त में गए—और जब इन्हें आनन्द उपलब्ध हुआ तो फिर ये वहीं क्यों नहीं बैठे रहे? फिर ये वापस लौट आए, उसी जनमानस में जिनमें से

वे गए थे। उससे दूर भागे क्योंकि दुखी थे और जब आनन्द उपलब्ध हुआ तो उसके पास आना पड़ा क्योंकि बांटने की जरूरत हो गयी। जब बादल पानी से भर जाते हैं तो बरसना पड़ता है और जब आत्माएं आनन्द से भर जाती हैं तो उनको भी बरसना पड़ता है। और जब दिया जलता है तो उसकी रोशनी चारों तरफ गिरती है। और जब किसी के भीतर ज्ञान का दिया जलता है तब भी उसकी रोशनी चारों तरफ गिरती है। और जब किसी के भीतर प्रेम विकसित होता है तो वह भी बंटता है।

स्मरण रखें एक तो वह सेवा है जो हम सोच विचारकर करते हैं और एक वह सेवा है जो सहजस्फूर्ति होती है। तो जिस आत्मसाधना के लिए मैं कह रहा हूं अगर वैसी आत्म साधना विकसित हो तो सेवा सोचनी नहीं पड़ेगी, सेवा निकलेगी। सोची हुई सेवा झूठी होती है। उसका कोई मूल्य नहीं है। जो निकलती है सेवा वही सत्य है। फिर यह भी ख्याल रखें कि जो सोच सोच कर सेवा करता है उसकी सब सेवा उसके "मैं" और अहंकार को प्रगाढ़ करती है। उसे लगता है कि मैं कुछ हूं, मैं सेवक हूं। आप देखते हैं। सेवकों को पहचानते होंगे। जगह जगह सेवक हैं। उनकी अत्यन्त सरलता के भीतर उनका अत्यंत कठोर अहंकार दिखाई पड़ेगा। उनकी सारी विनीत भावनाओं के भीतर उनका अत्यंत कठोर अहंकार दिखाई पड़ेगा। उनकी सारी विनीत भावनाओं के भीतर उनका दम्भ खड़ा हुआ दिखाई पड़ेगा। वे मालूम पड़ेंगे कि उनसे ज्यादा विनीत कोई नहीं है। 'मुझसे' ज्यादा सेवक कोई नहीं है, यह उनकी भावदशा होगी। सोच विचारकर की गई सेवा यही कर सकती है। और अगर सोच विचारकर की गई सेवा में सम्मान न मिले तो बहुत दिन सेवा चलती नहीं है। उसका रस सम्मान है। सेवा में रस नहीं, उसका रस सम्मान है। सोच विचारकर जो सेवा करता है, अगर सम्मान मिले तो सेवा चलती है और सम्मान न मिले तो थोड़े दिन में ही सेवा विलीन हो जाती है। मैं तो आपको कहता हूं जो सोच विचारकर साधु होते हैं उनकी साधुता भी सम्मान के बल पर टिकती है। अगर सम्मान न मिले तो साधू भाग जायेंगे। सौ में ९९ साधू सम्मान के बल और अहंकार के बल टिकते हैं। उनका जीना सोच विचार का है। साधुता अगर सहज आये तो सम्मान और असम्मान का कोई सवाल नहीं उठता। तब कोई प्रश्न और विचार नहीं उठता है। जो भी चीजें सोच विचार के जबर्दस्ती पैदा (Cultivate) की जाती हैं– वह अत्यन्त थोपे हुए ऊपर से लगाये गये पौधे हैं। जो किसी समारोह में काम दे सकते हैं लेकिन उनसे कोई फल फूल नही आते। मैं गया था एक जगह तो मैंने देखा कि वहाँ बगिया बिल्कुल नई तैयार की गई थी। वह सब पौधे उसी दिन गमलों से निकालकर लगा दिये गये थे। घंटे दो घंटे ताजे थे। मैं दिन भर वहां रुका और सांझ वापस हो रहा था तो मैंने देखा वह सब मुरझा गये हैं। कोई उनमें जान नहीं है। वह तो मुझे दिखाने के लिए उन्होंने लगाये थे। ये ऊपर से लगा सकते हैं ऐसा। इनका कोई मूल्य नहीं है। इनका कोई गहरा अर्थ नहीं है। मैं जो कह रहा हूं आत्म साधना को उसे मैं विश्व सेवा के विपरीत नहीं मानता बल्कि उसका आधार मानता हूं। बुनियादी आधार मानता हूं। धर्म से जो सेवा निकलेगी वही सत्य होगी। तो समझ लें कुछ सेवक हैं जो यह कहते हैं कि सेवा ही धर्म है। मैं उनकी बात को एकदम गलत कहता हूं। मैं कहता हूं धर्म ही सेवा है। सेवा ही धर्म है यह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं धर्म ही सेवा है। और इन दोनों बातों में जमीन आसमान का अन्तर है।

जो सेवा के साथ धर्म को एक कर देते हैं वह गलत बात कह रहे हैं। क्योंकि सेवा अहंकार भी हो सकती है। क्योंकि सेवा जबर्दस्ती आरोपित भी हो सकती है, क्योंकि सेवा केवल शौक भी हो सकती है, क्योंकि सेवा केवल फैशन भी हो सकती है। सेवा की एक हवा हो जाती है और उस फैशन में कई लोग चले जाते हैं। लेकिन धर्म सेवा है यह बिल्कुल दूसरी बात है। हाँ, जब भी धर्म होगा तो सेवा अपने आप निकलेगी और फैल जायेगी। तो जिस बुनियाद पर मैं जोर देता हूं वह है कि धर्म और संसार का कोई विरोध नहीं है। बल्कि धर्म ही बुनियाद है समस्त सत्य की, समस्त सत्ता की, संसार की भी। उस पर ही सब खड़ा होता है

लेकिन बड़े फर्क पड़ जाते हैं क्योंकि दृष्टि बदल जाती है। बहुत फर्क पड़ जाते हैं—तब आपको ऐसा नहीं लगता। अगर कोई व्यक्ति सोच विचारकर किसी की सेवा करता हो तो अपने मन में यह सोचता है कि जिस व्यक्ति की मैंने सेवा की है उसे मेरा अनुग्रहीत होना चाहिए, उसे मेरा धन्यवाद करना चाहिए। लेकिन जब सहज सेवा निकलती है तो वैसी जो सेवा होती है वैसा व्यक्ति सोचता है कि मैं उसका अनुगृहीत हूं जिसने मेरी सेवा स्वीकार कर ली है। क्योंकि अगर वह सेवा स्वीकार नहीं करता तो क्या होता। सोच विचारकर दिये गये दान में दानी समझता है कि जिसने मेरा दान लिया है उसे मेरा धन्यवाद करना चाहिए और प्रेम से निकले दान में दानी सोचता है जिसने मेरा दान स्वीकार कर लिया है मैं उसका अनुगृहीत हूं। यदि वह इन्कार कर देता तो मैं क्या करता।

मैं एक गांव में गया, वहाँ बोला। मैं बोलकर आ भी नहीं पाया था कि एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति ने आकर कई हजार रुपये मेरे पैर पर रख दिये और मुझे नमस्कार किया। मैंने उनसे कहा कि मैं नमस्कार तो ले लेता हूं लेकिन रुपये की अभी मुझे जरूरत नहीं है। जब जरूरत होगी तो मैं मागूंगा। रुपये आप वापस ले लें। मेरा इतना कहना था कि देखा उस वृद्ध की आंखों में आंसू आ गये। और उसने जो शब्द मुझसे कहे वह इतनी साधुता से भरे हैं कि वैसे शब्द मैंने किसी साधु से भी नहीं सुने। उस वृद्ध ने मुझसे कहा, 'मैं इतना दरिद्र आदमी हूं कि मेरे पास सिवाय रुपये के और कुछ भी नहीं है। और यदि आप मेरे रुपये इन्कार कर दिये तो मेरा क्याहोगा? मेरे पास देने को तो कुछ और है ही नहीं। इन्हें उठाकर फेंक दें। इन्हें फाड़ दें, इन्हें किसी को दे दें लेकिन इन्हें स्वीकार कर लें। मैं अनन्त उपकार मानूंगा। यह कुछ और ही बात है। यह किसी और ही तल से आती हुई बात है। यहां जो दे रहा है वह धन्यवाद का पात्र नहीं है। यहां जो दे रहा है, जिसने दिया है वही अपने को अनुगृहीत मानेगा कि किसी ने लिया। तो सेवा जब भीतर से निकलेगी तो बहुत दूसरी बात है, बहुत ही दूसरी बात है, बहुत ही अलग बात है। और सेवा जो सोच विचारकर निकलती है कि सेवा करनी चाहिए—चाहे माँ बाप की, चाहे समाज की। जहाँ हम सोच विचार करते हैं कि करनी चाहिए—यह मेरी भां है—इसलिए इसकी सेवा करनी चाहिए यह झूठी सेदा हो गई। सेवा करनी चाहिए का प्रश्न ही गलत है, सेवा होनी चाहिए। और सेवा होगी कब? करने और होने में फर्क समझना आप। वहां आपका जीवन होना चाहिए—सेवा, आपका सोच विचार कर किया हुआ कर्त्तव्य नहीं। वह आपकी सहजचर्या होनी चाहिए। वह तभी होगी जब आप आत्म साधना में प्रवृत होंगे। इससे पहले नहीं।

इसलिए मैंने कहा व्यक्ति का जो निजी हित है वह समाज के विरोध में नहीं है और न हो सकता है। क्योंकि अगर व्यक्तियों के निजीहित समाज के विरोध में होंगे तब तो समाज खड़ा ही नहीं रह सकता। क्योंकि सारे व्यक्तियों से मिलकर ही तो समाज बना है और प्रत्येक व्यक्ति का हित समाज के विरोध में हो यह कैसे हो सकता है? क्योंकि सभी व्यक्तियों का जो हित है उसमें वस्तुतः एक व्यक्ति का हित बुनियाद में होना ही चाहिए। जो एक का हित है वह सबका हित होना ही चाहिए। अगर वह हित ठीक हो, सच्चा हो, सम्यक हो तो। उस हित की ही मैंने चर्चा की है। मैं समझता हूं कि मेरी बात आपको ख्याल में आ सकी होगी।

(संकलन : श्री भीकमचंद)

❖ निवेदन. . .

१– पूज्य आचार्य श्री के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विषयों पर प्रवचनों को संकलित कर कृपया सम्पादकीय कार्यालय में पहुंचा दें––ताकि आपके सहयोग से नवीनतम प्रवचनों को हम 'युक्रांद' में प्रकाशित कर सकें।

२– यदि आपको 'युक्रांद' का अंक नहीं मिल रहा तो उसकी सूचना पहुंचा दें।

३– यदि आपका नाम तथा पता ठीक नहीं है, तो उसे ठीक करने हेतु सूचना पहुंचा दें।

❀ आचार्य श्री के देश व्यापी कार्य-क्रम ❀

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
३, ४ एवं ५ अगस्त ६९.	लुधियाना	सत्संग	श्री जी. बी. एस. गिल, जीवन जागृति केन्द्र, सीनियर सुपरिटेंडेंट आफ पुलिस, लुधियाना।
१४, १५, १६ एवं १७ अगस्त ६९.	बड़ौदा	सत्संग	श्री बच्चू भाई सुतारिया, जीवन जागृति केन्द्र, हकीमवाड़ा, नागरवाड़ा रोड, बड़ौदा।
१८, १९ एवं २० अगस्त	अहमदाबाद	सत्संग	श्री जे. एम. ठाकर, जीवन जागृति केन्द्र, डायकेम कार्पोरेशन, खादिया चार रास्ता, अहमदाबाद-१। फोन : २४०८३.
२४ अगस्त ६९.	शहीद स्मारक भवन, जबलपुर	प्रवचन	श्री भीकमचन्द जीवन जागृति केन्द्र, ३८९, हनुमानताल, जबलपुर। फोन : २९५७.
३०, ३१ अगस्त एवं १ सितम्बर ६९.	कानपुर	सत्संग	श्री राजेन्द्र शुक्ल, दैनिक नव भारत, नागपुर।
१०, ११, १२ एवं १३ सितम्बर ६९.	पूना	सत्संग	श्री माणिक बाफना, २४७।१४ बी, इरोडा, पूना-६। फोन : २४११४.
१८ सि. से ३ अक्टू. ६९.	काश्मीर प्रवास		श्री लाला सुन्दरलाल, ४१ - यू. - ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-६। फोन : २२७६५५.

आचार्य श्री की अमृतवाणी का त्रैमासिक संकलन

सम्पादक : श्री महिपाल

ज्योति शिखा

वार्षिक शुल्क : ५) रुपया
१ प्रति : १)२५ पै०

— प्राप्ति स्थल —

जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं० ५३, दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई-१.

★ NICKEL SULPHATE
★ NICKEL CARBONATE
★ NICKEL FORMATE
★ SODIUM FORMATE
★ TRI CALCIUM PHOSPHATE B.P.C
★ PHOSPHORIC ACID
Technical 85% Water White

Manufacturers:

ANANG CHEMICALS

FACTORY:— Kolbad Road
Panch Pakhadi
J. K. Gram
THANA
Maharashtra
Phone—591576

OFFICE:— 20,"L. K. Market"
Zaveri Bazar
Bombay-2 B. R.
Phone—29528

मध्यप्रदेश का गौरव....

निर्माता—

सरगोधा सोप वर्क्स

जबलपुर ।

तुलसी मानस प्रकाशन

गुप्ता मिल्स स्टेट, बम्बई--१०

श्री हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित :–

१. **संसार का सार** (मू. रु. ३) आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव जन्तुओं, वनस्पतियों विभिन्न व्यवसायक व्यक्तियों तथा पदार्थों आदि के द्वारा अध्यात्म शिक्षा देने का यह प्रयत्न नवीन होते हुये अपने प्रस्तुतीकरण के ढंग और साथ ही विवेचन के संदर्भ में एक नवीनता को लिए हुये है। नवभारत टाइम्स बम्बई

२. **ज्ञान साधना** (मू रु. २) लोनावाला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञानसाधना के प्रति संकेत।

३. **विज्ञान से ज्ञान** (मू. रु. १) ऐक्सरे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर अध्यात्मविद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास है।

४. **वेदान्त नवनीत** (मू. १.५० पैसे) सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे महात्माओं के प्रवचनों का सार है।

५. **वेदान्त का सरल बोध** (मू. रु. १) वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धान्त बड़े ही सरल उदाहरणों द्वारा समझाकर पाठकों के सामने रखे गये हैं।

६. **आध्यात्मिक पिक्टोरियल** [हिन्दी व अंग्रेजी] (मू. रु. ३) इस पुस्तक में ज्ञान की गम्भीर बातों को सूत्र रूप में बाँध कर उन्हें चित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वाक्य हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हैं।

७. **मुमुक्ष** [आध्यात्मिक उपन्यास] (मू. रु. ३) आध्यात्मिक दृष्टि से पात्रों के जीवन किस प्रकार उपन्यास पाठकों के भौतिक दृष्टि को बदल सकते हैं, इस विषय में एक अत्यन्त ही नया प्रयोग है।

८. **मन की शांति** [पद्य] (मू रु. ४) अंग्रेजी मूल रचना 'पीस आफ माइण्ड' का अनुवाद, जिसमें मन की शान्ति देने वाली गहन आध्यात्मविद्या को सरल भाषा में पद्यबद्ध किया गया है।

९. **हमारी परम्परा** (मू. रु. २) हमारी ऋषि परम्परा क्या है और उसे जीवन में किस प्रकार उतारा जाए—

और

अध्यात्मिक मासिक

म न न

जिसमें प्रति मास भारत के उच्चकोटि के विद्वानों के लेख एवं प्रख्यात संत-महात्माओं की अनुभव-पूर्ण वाणी को संकलित कर पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

एक प्रति ४० पैसे

वार्षिक ४ रु० दो वार्षिक ७ रु० तीन वार्षिक १० रु०

चार वार्षिक १२ रु० और पांच वार्षिक १५ रु०

सर्वोत्तम धुलाई के लिए....

— सुप्रसिद्ध —

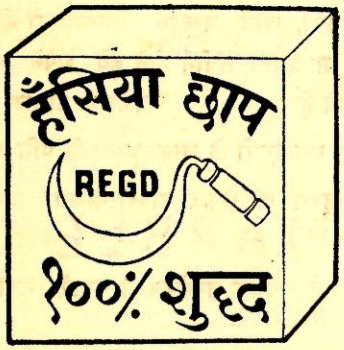

हँसिया छाप

साबुन

को आप भी अपनाईये

और अन्य साबुनों की तुलना में फर्क अनुभव कीजिए

—० निर्माता ०—

नेशनल सोप इन्डस्ट्रीज

बल्देवबाग, जबलपुर

फोन : ३११९] [तार : ग्रोवर

DEEPAK

फोन नं० : २६२०.

स्वास्थ्यप्रद भोजन एवं

उत्तम निवास के लिए पधारिये

रिपब्लिक हॉटल एण्ड रेस्टारेंट

नौदरापुल, जबलपुर ।

FOR BEST MOSAIC TILES

PLEASE CONTACT :

VENUS TILES & MARBLE

Manufacturing Co. (Pvt.) Ltd

Phone : 327618
327009

OFFICE :—

31, ISRAIL MOHALLA,
BHAGWAN BHAVAN,
1st FLOOR, MASJID BUNDER ROAD,
BOMBAY—9 B. R.

FACTORY AT :—

SIDHPURA INDUSTRIAL ESTATE
MASRANI LANE,
KURLA, BOMBAY—70

उत्तम तम्बाकू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

-०-

मोहनलाल हरगोविंददास

(जबलपुर म० प्र०)

मानसेवी संपादक श्री अजितकुमार एम० काम०, एल एल० बी० द्वारा सम्पादित एवं युक्तांद प्रकाशन समिति, कमला नेहरू नगर, जबलपुर के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित । मुद्रण स्थल—जबलपुर को-आपरेटिव प्रिंटिंग प्रेस, जबलपुर.